धर्मप्रेमी बन्धुओ ! यदि आप सरलतासे आध्यात्मिक ज्ञान व विश्[illegible] चाहते हैं तो अध्यात्मयोगी पूज्य श्री मनोहर जी वर्णी सहजानन्द महाराजके [illegible] प्रवचन और निबन्धोंको अवश्य पढ़िये। आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वा[illegible] है कि इनके पढ़नेसे आप ज्ञान और शान्तिकी वृद्धिका अनुभव करेंगे।

अध्यात्मग्रन्थ सेट

आत्मसंबोधन सजिल्द	१।।।)
सहजानन्द गीता सार्थ सजिल्द	१)
सहजानन्द गीता सतात्पर्य स०	२।)
तत्त्व रहस्य	१)
अध्यात्मसहस्री	१)
अध्यात्मचर्चा बडी	।।।=)
अध्यात्मचर्चा छोटी	।।)
द्रव्यसंग्रह प्रश्नोत्तरी टीका स०	३।।)
आत्म उपासना	।)
सामायिक पाठ	-)
स्वानुभव	=)
अध्यात्मसूत्र सार्थ	≡)
तत्त्वसूत्र सभावार्थ	।=)
एकीभाव स्तोत्र अध्यात्म ध्वनि	।)
कल्याणमन्दिर स्तोत्र अध्या०	।)
विषापहार स्तोत्र अध्यात्मध्वनि	।)
समयसार भाष्य पीठिका	।-)
समयसार महिमा	।)
समयसार दृष्टान्तमर्म	।।)
सहजानन्द डायरी १९५६	२)
सहजानन्द डायरी १९५७	२)
सहजानद डायरी १९५८	१।।)
सहजानन्द डायरी परि० १९५९	।।)
सहजानन्द डायरी १९६०	१)
भागवत धर्म	२[illegible]
मनोहर पद्यावलि	।=[illegible]
स्तोत्र पाठ पुञ्ज	।।[illegible]
सूत्र गीता पाठ	।-[illegible]

यह सेट लेने पर = प्रति रु० कमीश[illegible]

अध्यात्मप्रवचन सेट

धर्मप्रवचन	१[illegible]
सुख कहां	।[illegible]
प्रवचनसार प्रवचन प्रथम भाग	३[illegible]
प्रवचनसार प्रवचन द्वितीय भाग	४[illegible]
प्रवचनसार प्रवचन तृतीय भाग	२[illegible]
प्रवचनसार प्रवचन चतुर्थ भाग	३[illegible]
अध्यात्म सूत्र प्रवचन पूर्वार्द्ध	३[illegible]
अध्यात्मसूत्र प्रवचन पूर्वोत्तरार्द्ध	३[illegible]
देवपूजा प्रवचन	३[illegible]
श्रावकषट्कर्म प्रवचन	१[illegible]
दार्शनिक सरल प्रवचन	।)
समयसार प्रवचन प्रथम पुस्तक	३)
समयसार प्रवचन द्वितीय पुस्तक	२)
समयसार प्रवचन तृतीय पुस्तक	२)
समयसार प्रवचन चतुर्थ पुस्तक	२)
वर्णी प्रवचन फाइल प्रथम	५)
,, ,, द्वितीय	५)

यह सेट लेने पर =) प्रति रु० कमीश[illegible]

सहजानन्द डायरी १९६६

PERSONAL MEMORANDA

Name मनोहर वर्णी सहजानन्द। 'वस्तुत निर्नाम शुद्ध चैतन्य'

Address .. . .

निज—चतुष्टय

Date of शरीर-Birth १-११-१९१५ तिथि कार्तिक वदी १० वि० स० १९७२
आत्माअनादि।

Weight कुछ नही — Date अनादि

यहा Height ..Ft ५, In. ३ करीब — Hat No मध्यम तैजस शरीर

Motor No. अनिन्द्रिय — Date of Licence Fee अन्तर्मुहूर्तकर्म इस जीवनका आदि क्षण

Motor Bicycle No परोक्षज्ञान — Date of Licence Fee क्षयोपशम-योग्यताकाल

Bicycle No. यादद्वय — Name of Model अङ्गोपाङ्ग नामकर्म

Radio No. मुख — Name of Model स्वरनामकर्म

Watch No होनहार — Name of Model स्वकाल

Monthly Ticket No २ प्रतिक्रमण — Season Ticket No श्री गणेशवर्णी सघ

Phone No —Office ११ — Residence १

Telegrahic Address अनुभूति

Insurance Policy No. तृतीय आयु (मनुष्यायु)

Date of Premium No भुज्यमान आयुके अन्तिम क्षण

सहजानन्द डायरी १९६०

—:*—

१ जनवरी १९६०

आज नवीन लौकिकवर्ष प्रारम्भ हो रहा है। जीवका वास्तविक नव वर्ष सम्यतत्वसे प्रारम्भ होता है। समय वह सफल है जब कि जीवकी परिणति निर्दोष बने या बनने लगे। यह बात निर्दोष आत्मतत्त्वकी भावना पर निर्भर है। जितना अधिक उपयोग निज सहज चैतन्यस्वभावकी प्रतीति सहित बर्तेगा उतनी ही निर्दोषता परिणतिमे प्रगट होगी।

प्रत्येक जीव अपने आपकी प्रतीति सहित तो रहता ही है, क्योकि सभी जीव अहपनेका अनुभव करते है, किन्तु अपनेको कौन किस रूपमे अहका अनुभव करता है? इसी आधार पर ससार व मोक्ष-मार्ग अवलम्बित है। आपकी जो वर्तमान अवस्था है उस रूपमे ही अहकी स्वीकारता व प्रतीति ससार व ससार मार्ग है और अनाद्यनन्त एक सत् चित् रूपमे अहकी स्वीकारता व प्रतीति मोक्ष-मार्ग है।

मैं एक सद्भूत वस्तु हूँ, अत परिणमनशील ही हूँ। परिणाम विना वस्तुका अभाव है, किन्तु जिसका परिणमन होता रहता है वह तो ध्रुव एक है ही। इस ध्रुव एक निज चैतन्यकी स्वीकारता मे व अध्रुव परिणतियोके मात्र ज्ञाता रहनेमे कलुषताका साम्राज्य नही टिक सकता, फलस्वरूप परिणतिकी निर्दोषता प्रकट होती है।

निर्दोष चर्यासे ही समयकी सफलता है। यह नया वर्ष लग रहा है। वीतराग, सर्वज्ञ अनन्तानन्दमय परमात्माके ध्यानका प्रसाद नित्य वर्तो, जिससे समय निर्दोष परिणमन सहित व्यतीत हो, एतदर्थ इस नववर्षका भी स्वागत है।

२ जनवरी १९६०

शास्त्र चर्चणमे तुष्ट रहना प्रगतिका हेतु है। इतर जनोकी सेवामे लगना भी बुरा नही है, किन्तु वहाँ वह कार्य सेवा तक रहना कठिन हो जाता है और

पर्याय बुद्धिके सस्कारके कारण स्वभावदृष्टिसे हटकर बाह्य वातावरणमे राग आना सुगम हो जाता है। मुमुक्षु साधारणके अर्थ तो ज्ञानमार्ग व निष्काम कर्म योग दोनोपर चलना ठीक है। यही दशा प्राय अपनी है। दोनो बाते होना ठीक है परन्तु इसमे अन्तर्विघ्न यह आता है कि ज्ञान मार्गमे कुछ चलकर आत्म-निर्बलताके कारण ऊब आ जानेसे कर्मयोगमे प्रवाहित यह हो जाता है और फिर कर्मयोगमे सार न पानेपर ज्ञानमार्गमे विशेष लगनेके यत्नमे होने लगता है। इस द्विविधामे समय व्यतीत हो जाता है।

यदि सावधानी सहित ज्ञानमार्ग व निष्कामकर्म योग दोनोकी मैत्री बनाये रखें तो अन्तमे सन्तोषकर दृष्टि पा भी सकी जाती है।

कल नीमियाघाट जानेका प्रोग्राम है, वहा इस चर्चामे रहनेका भाव किन्तु जब ईसरी आवेंगे तब कुछ परिवर्तन चलेगा—

प्रात ४ बजेसे ४॥ तक अध्यात्मपाठ	१०—११ शुद्धिस–चर्या, आराम,
४॥ से ६॥ तक सामयिक व प्रतिक्रमण	११। —।॥ तक सामयिक
६॥ से ७॥ तक शौचनिवृत्ति आसनादि	।॥—१ तक विश्राम
७॥ से ८ तक देववदन व भजन श्रवण	१—२ तक लेखन
	२—३ तक अपना स्वाध्याय
८ से ८॥ तक प्रवचन (जो भी हो उनको)	३–३॥ तक शास्त्रश्रवण
	३॥—४ तक चर्चा समाधान
८॥ से ९ तक वार्तालाप	४— ४॥ तक विश्राम सेवा
९ से १० तक नियमसार स्वाध्याय	४॥—६। तक सामयिक
	६।—७ तक अध्यात्मपाठ
	७—७॥ तक भजन श्रवण
	७॥—८॥ श्लोक वार्तिक
	८॥—विश्राम शयन

३ जनवरी १९६०

आज ईसरीसे चलकर नीमियाघाट आये। स्थान सुरम्य है। मोहमे जो

आराम चाहे जाते है वे आराम यहाँ नही है, किन्तु बाधाओमे भी जीवन बिताना एक सपत्ति है।

ज्ञानानन्दमे सर्व आत्मगुणगर्भित है, इनके विकासका यह क्रम अन्तर्दृष्टि मे कहा जा सकता है कि आत्मामे ज्ञानका विशेष विकास हुआ यह विकास यथार्थबोध का अनुसरण करनेसे निर्विकल्पकताकी ओर अभिमुख हुआ और इस पद्धतिसे चलनेसे दर्शनका विशेष विकास हुआ, दर्शनके विकासमे आत्माका उपयोग हुआ, इसके परिणामस्वरूप आत्माका अभेदग्रहण होता है तो वह सम्यक्त्वका विकास है। इस विकासकी स्थिरता चारित्र है, चारित्रके फलस्वरूप शुद्ध आनन्द प्राप्त होता। इस तरह ज्ञानसे प्रारम्भकर अन्तमे आनन्द पा ही लिया गया। यहाँ एक इस चैतन्यका ही विकास उत्तरोत्तर हुआ, अत ये सब चेतन गुण है। ज्ञाननन्दमे सर्व आत्मगुणगर्भित है। ॐ ज्ञानान्दात्मने नम ।

परपदार्थोसे अशरण इस निज आत्माका वास्तवमे मुख्य काम निर्लेप होने का उपाय कर लेनेका पडा है। अन्य बाते तो इसके लिये बेकार है। इसके लिये तो इस समय जितना स्वाध्याय विशेष हो सके वह सहायक है। साक्षात् सहायक उत्तम ध्यान है।

४ जनवरी १९४०

यह निर्जन अटवी का एकान्तवास कितना हितप्रेरक हो रहा है। तत्त्व तो यह सहज निरपेक्ष चैतन्यभाव है।

स्वभावानन्तचतुष्टयमय निज कारण परमात्माकी दृष्टि ही शरण है। जब तक अपने आपमे विराजमान प्रभुकी प्रभुताके दर्शन नही होते, तब तक यह जीव न तो प्रभुभक्त है और न मोक्षमार्गी है।

यह आत्मा गुणवान् है, पर्यायवान् है, किन्तु गुणभेद व पर्यायभेदकी दृष्टिसे यह आत्मा उपलब्ध नही होता। अतः व्यवहारनयसे आत्मा गुणवान् है, पर्यायवान् है, किन्तु निश्चयसे आत्मा चैतन्यपरिणामका उपादान कारण स्वरूप है अथवा गुणपर्यायोसे अभेद रूप अथवा गुणपर्यायोसे परे सहज चिच्छक्तिमात्र है।

यह चेतन प्रभु एकरूप भी है। अनेकरूप भी है, एक कालमे भी अनेकरूप है, त्रिकालमे भी अनेकरूप है, एककालमे भी एकरूप है, त्रिकालमे भी एकरूप है, मलिन होते हुए भी शुद्ध है, निर्मल होते हुए भी शुद्ध है।

पदार्थोके जाननेका उपाय नय भी है। अर्थनय ४ हैं जिनमे—

(१) नैगमनय तो प्रमाणके निकट है।

(२) सग्रहनय ब्रह्मवादके निकट है।

(३) व्यवहारनय भेदवाद (वैशेषिक) के निकट है।

(४) ऋजुसूत्रनय क्षणवाद (बौद्ध) के निकट है।

प्रधानता व गौणताका अभिप्राय न रहे तो वह नैगम नैगमाभास है। व्यवहारनयादिकी अपेक्षा न रखे तो सग्रहनय सग्रहाभास हो जाता। सग्रहनयादिकी अपेक्षा न रखे तो व्यवहारनय व्यवहाराभास हो जाता है। सग्रहनयादि (द्रव्यादि) की अपेक्षा न रखें तो ऋजुसूत्रनय ऋजुसूत्राभास हो जाता है।

५ जनवरी १९६०

आज ईसरी गये व २॥ बजे लौटकर नोमियाघाट आ गये। पूज्य गुरुवर्य जी स्वस्थ हैं यह देखकर प्रसन्नता हुई। आहारचर्या भी ईसरी हुई।

ॐ शुद्ध चिदस्मि, मै शुद्ध चैतन्य हूँ। मुझमे कुछ गुजरो, गुजरने वाले परिणामसे राग करनेमे क्या लाभ है अथवा द्वेष करनेमे क्या लाभ है ? नाव फसी है, यहा तो ज्ञाता द्रष्टा रहनेमे ही काम पूरा पडेगा। इसका फसना भी विचित्र है और उबरनेको पद्धति भी अलौकिक है। सार अपने अन्तस्तत्त्वमे है। तभी महान्मे महान् पुरुप भी यही कर गये कि जो उन्हे विपुल वैभव मिला था उसका भी परित्याग कर निज शिवतत्त्वमे विलास कर सर्वक्लेश विमुक्त, निर्मल, सर्वज्ञ व सर्वदर्शी हुए। शुद्ध चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम्। प्रभजामि शिव चिदिद सहजम्। ॐ ॐ ॐ ॐ, ॐ ॐ ॐ। ॐ ॐ ॐ ॐ, ॐ ॐ ॐ।

करनेका काम तो एकत्व विभक्त आत्मतत्त्वकी दृष्टिका है। इसीमे इस दुर्लभ मनुष्य जन्मकी सफलता है।

६ जनवरी १६६०

आज उपवास सानन्द हो रहा है।

अब प्रमेयकी अपेक्षा प्रत्येक ज्ञान प्रमाण है। यहाँ तक कि सशय, विपर्यय, अनध्यवसाय ज्ञान भी अवप्रमेयकी अपेक्षा प्रमाण है, क्योंकि अवप्रमेयमे प्रमाणता न हो, सशयादि भी नही हो सकता तथा स्वरूपकी अपेक्षा वहाँ भी अविसवाद है। वहा भी अप्रत्ययसिद्ध है। प्रमाणता व अप्रमाणताका निर्णय बाह्य अर्थाकारके विषयमे ही किया जाता है।

कोई स्वसवेदि ज्ञानको ही वास्तविक मानकर विकल्प ज्ञानको अप्रमाण तथा बाह्य अर्थको मिथ्या कहे तो वह उचित नही है। यह घर है, यह पर है आदि रूपसे जाति आकार आदि सब अवबोध होता ही है। ज्ञानके विषयभूत पदार्थ भी है ही क्योंकि उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मकता वहा भी देखी ही जाती है।

बाह्य प्रमेयकी अपेक्षा प्रमाणके भेद ये होगे— परोक्ष व प्रत्यक्ष। परोक्ष ज्ञानके भेद ६ है— (१) साव्यवहारिक प्रत्यक्ष, (२) स्मृति (३) प्रत्यभिज्ञान, (३) तर्क, (४) अनुमान व (५) श्रुतज्ञान। प्रत्यक्ष ज्ञानके ३ भेद हैं— (१) अवधिज्ञान, (२) मन पर्ययज्ञान व (३) केवलज्ञान।

वस्तुके अधिगमका उपाय नय भी है वे ७ है—

(१) नैगमनय—जो भेद व अभेद दोनोको कभी किसीकी मुख्यतासे ग्रहण करे,

(२) सग्रहनय—जो अभेदको ग्रहण करे,

(३) व्यवहारनय—जो भेदको ग्रहण करे,

(४) ऋजुसूत्रनय—जो कालकृत भेदको (क्षणिक पर्यायको) ग्रहण करे,

(५) शब्दनय—जो कालकृत भेदको भी लिङ्गादि भेदसे विभेदरूप ग्रहण करे,

(६) समभिरूढनय—जो उक्त विभेदको भी विभिन्न वाक्योमे से किसी एकको ग्रहण करे,

(७) एवभूतनय—जो उक्त विभेदको भी उस क्रियासे परिणत होते हुए मे ही ग्रहण करे ।

७ जनवरी १९६०

आज ईसरी गये व २॥ वजे नीमियाघाट आ गये । आहारचर्या भी ईसरी मे की । अव विचार है कि आगे जव तक महाराज जी के समीप हैं प्रति दिन सुवह ईसरी मुझे होना चाहिए ।

जो जन आत्माको अकर्ता किन्तु भोक्ता मानते हैं । उसमे यह दृष्टि इस मान्यताका कारण हुई होगी । चू कि आत्म चेतन स्वभावी है और उसका मात्र चेतनेका काम है । अत राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभादिक जितने कार्य है वे आत्माके स्वभावसे नही होते, किन्तु कर्म प्रकृतिके उदयसे होते है । ज्ञानादि भी कर्म प्रकृतिके क्षयोपशम या क्षय आदि होनेके अनुसार प्रकट होता है । अतः कषाय, ज्ञान, श्रद्धान आदि सव प्रकृतिके विकार है । आत्मा उनका कर्ता नही किन्तु उनके होने पर जो सुख दु ख आदि फल होता है उसे वुद्धि आत्माके पास पेश कर देती है तव आत्मा उसे चेतता है, इसलिए भोक्ता आत्मा है, क्योकि प्रकृत्ति सुख दु ख नही भोग सकती ।

उक्त मान्यतामे अपेक्षाकृत तथ्य तो निकल आता है किन्तु वस्तुस्वरूप नहीं वन पाता । उक्त मान्यतामे भी यदि स्याद्वादका आश्रय लिया जावे तो वह भी सत्य हो जाता है ।

तत्त्व तो सत् मानने पर देखा जाता है और जो सत् है वह उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मक होता है, इस पद्धतिसे फिर तत्त्व खोजो तो यथार्थ खोज होती है । उपर्युक्त सिद्धान्तमे अन्तमे तो चेतने वाला तो आत्माको मानना ही पडा । अव वह आत्मा कभी किसीके चेतनेका अवसर पाता तो कभी किसीके चेतनेका अवसर पाता और कभी किसीके चेतनेकी अवस्था नही करता (निर्माण होने पर) । इससे तो आत्मा परिणामी सिद्ध हो गया ।

सारा रहस्य द्रव्यदृष्टिसे देखने पर आ जाता है, किन्तु पर्याय दृष्टिके विषय का विरोध करने पर द्रव्यदृष्टि भी यथार्थ नही वन सकती ।

८ जनवरी १९६०

मैं क्या हूँ ? इसका यथार्थ उपादेय निर्णय करके उसके अनुकुल ज्ञानाचरण करना सो ही वास्तवमे मेरा शरण है। बाह्य अर्थ मित्रादिक व धनादिक तो मैं हूँ ही नही। शरीर भी मै नही हूँ। कर्म भी मैं नही हू। रागादिक भी मैं नही हूँ क्योकि परस्वभाव होनेसे यह भी पर है। बाह्य पदार्थोंके जानने रूप परिणामा ज्ञान भी मैं नही हू, क्योकि वह परोपयोग है अध्रुव है। यावन्मात्र विकल्प व कल्पनाये हैं वह भी मैं नही हूँ, क्योकि वे सब भी कर्मकी ही किसी परिस्थितिके निमित्तसे होती हैं तथा अध्रुव हैं। निजात्माके विषयमे हो रहा गुण पर्यायका ज्ञान भी मैं नही हू, क्योकि वह भी कर्म ही किसी परिस्थितिके निमित्तसे होता है तथा अध्रुव है। परमपारिणामिकके भाव रूपमे होने वाले निजका ज्ञान भी मैं नही हू, क्योकि वह ज्ञान भी औपाधिक और अध्रुव है। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव आदि किसी भी दृष्टिसे परखमे आने वाला निजतत्व मैं नही हू, क्योकि मै अखण्ड स्वस्वरूपात्मक हूँ। परनिरपेक्ष, उत्पादव्यय ध्रौव्यकल्पनासे परे, गुणपर्यायो से परे, सर्व पर-द्रव्योसे विविक्त, सर्व परभावो से परे, सर्व नयपक्षातिक्रान्त, परमपारिणामिक भावमय कारणसमयसार मैं हूँ। इसकी दृष्टि करके इसकी शरण ग्रहण करना सवक्लेशोसे मुक्त होनेका एक उपाय है।

इसका शरण गह लेनेका लक्ष्य यह है कि फिर उस परमशरणागत जीव का उपयोग विषय कषायोमे नही लगना चाहिये। कुछ काल तक क्वचित् कदाचित् लगना भी पड जाय तो उस लगनेसे अधिकमात्रामे उस प्रवृत्ति पर विषाद होना चाहिए और तुरन्त ही अवसर पाकर इस परमशरणकी शरणमे विश्राम करना चाहिये।

९ जनवरी १९६०

निश्चयनयसे ससारमे भी जीव मुक्त जीवोके सदृश है अर्थात् इनके भी गुण पर्याय मुक्त जीवके गुण पर्यायोके सदृश है। इस बातको समझनेके लिये ३ दृष्टिसे देखना—

(१) आत्माका गुण चैतन्य है और चैतन्यस्वभावके भेद करके ज्ञान, दर्शन चारित्र, आनन्द, श्रद्धा आदि विवरण करना सो पर्याय है अर्थात् गुण नाम अखड स्वभावका है और पर्याय नाम विविध शक्तियोका है सो स्वभाव व शक्तिया दोनो जगह सदृश हैं।

(२) यहा और वहा सर्वत्र जीव गुणो (त्रैकालिक शक्तियो) से समान हैं। पर्याय भी चू कि सभी द्रव्योमे प्रतिसमय पर्याय होती हैं ऐसा द्रव्यका स्वभाव है सो पर्याय होती ही है और दूसरे समयमे विलीन हो जाती है। भेद ग्राहक निश्चयनयसे प्रत्येक पर्याय स्वतन्त्र है, स्वय अपने समयमे होती है उसमे कार्य कारण भाव, आधार आधेय भाव आदि नही है, ऐसी सूक्ष्म ऋजुसूत्रनयसे पर्याय पद्धति भी यहाँ वहाँ सर्वत्र समान है।

(३ जीवके गुण तो समान हैं ही और चू कि जीव द्रव्य है सो प्रतिक्षण परिणमन शील होनेसे यहाँ भी पर्याय प्रतिसमय होती है, वहाँ भी पर्याय प्रतिसमय होती है, ऐसी समानता है।

परिणति विशेषकी दृष्टिसे ससारी व मुक्तजीव समान नही हो सकते हैं।

सार बात तो यह है कि खुदको सहजसिद्ध स्वभावमे देखो क्योकि यही अपना ध्रुव है वहीं त्रिकाल खुद है। खुदके समझे विना अन्य कुछ भी सहायक नही है।

१० जनवरी १९६०

जीवका चैतन्य लक्षण है वह अनुवर्तक भी है और व्यावर्तक भी है। यदि अनुवर्तक न हो तो अव्याप्ति दोष होता और यदि व्यावर्तक नही होता तो अतिव्याप्ति दोष होता। तात्पर्य यह है कि चैतन्यस्वभाव सब जीवोमे समानरूप से है और जीवकी सभी पर्यायोमे है, तथा जीवातिरिक्त समस्त पदार्थोमे चैतन्य लेशमात्र भी नही है।

जीवमे अनेको गुण है उनमे जो साधारण गुण है अर्थात् जो जीवमे भी हो सकते है और अजीवमे भी, किसीमे या अनेकमे या सबमे हो सकते हैं, वे गुण तो द्रव्यके रहनेसे जीवमे है और जो गुण असाधारण है अर्थात् जीवमे

ही हो सकते हैं, अजीवमे किसीमें भी नही हो सकते, वे सब चैतन्य स्वभावके अवयव हैं। यहाँ अवयव अलकार रूपसे कहा है, वास्तविकता अनुभवसे जानना। इस प्रकार ज्ञान, दर्शन, श्रद्धा, चारित्र, आनन्द आदि गुण तो चैतन्य-स्वरूप है और अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, अगुरुत्व घुत्व, प्रदेशवत्त्व, प्रमेयत्व, अमूर्तत्व, सूक्ष्मत्व, क्रियावत्त्व आदि गुण चैतन्यस्वरूप नही, किन्तु चैतन्यमय जीवमे समवेत होनेसे चैतन्यमय है और अजीव द्रव्योम अचेतनस्वरूप है।

भूतार्थ दृष्टिसे ज्ञान, दर्शन—ये दो गुण तो चैतन्यस्वरूप है और श्रद्धा, आनन्द, चारित्र आदि गुण अचेतन है क्योंकि ये चेतनेका काम नही करते, प्रत्युत ज्ञानके द्वारा चेते जाते है, फिर अस्तित्वादि गुण तो प्रकट अचेतन प्रसिद्ध ही हो जाते है।

जीवका हित परनिरपेक्ष स्वत सिद्ध, सहजसिद्ध परमपारिणामिक भावमय चैतन्यस्वभावकी उपासनामे है।

११ जनवरी १६६०

अब जो अवस्था हो उसका ज्ञाता रहनेका यत्न होना चाहिए। मैं वास्तव मे एक चैतन्य पदार्थ हू, मेरा स्वरूप केवल चैतन्यात्मक है। अहो! इसकी यह अवस्था कैसे हुई, क्यो हुई, जो कि शरीरमे बधा है, कर्मोसे बंधा है, परतन्त्र हो रहा है, विकल्प क्षोभोका घर बन गया है, शरीर वगैरह कुछ भी अणुमात्र मेरा नही है और न उनसे हित है, अहित ही जो चाहे हो रहा उनसे, फिर भी उन परपदार्थ-विषयक विकल्पोकी विपदा लग रही है। यह सब आश्चर्यकी बात है अथवा आश्चर्य कुछ नही— यह आत्मा अपने स्वभावमे स्थित नही हो सका, इस कारण अनेको विकल्प करने वाला हुआ सो इसके फलमे कार्माण वर्गणायें (एक प्रकारका सूक्ष्म भूत) कर्मरूपसे जीवके एक क्षेत्रावगाहमे बन्धन रूप हो गया, जिनके उदयमे ऐसा ही होता है कि इन शरीरोमे रहता है यह ससारी प्राणी, नाना बाह्यदृष्टिमे बनाता है यह, आकुलित होता है यह। ये सब तो क्लेश ही हैं। यदि एक भवका कोई आराम पाया तो वह क्या आराम है क्योंकि परमपारिणामिक भावमय निज समय-

साररूप कारण परमात्माका श्रद्धान, ज्ञान व आचरण न कर सके तो इस प्राप्त भवसे जघन्य भव पशु पक्षियो आदिके हो जावे और वहाँ क्या-क्या होता है सो प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है, कुछ तो पशु पक्षियोको देखकर।

१२ जनवरी १९६०

जो भी मिला है वह सब अध्रुव है। यहाके असमान-जातीय द्रव्य पर्यायो को (मनुष्यादिको को) देखकर अपनेमे नामकी कल्पना करके अपने स्वभावसे च्युत होकर परविषयकी कल्पनाये करना ही विपदा है, ससार है, दु खका मूल है। राग, द्वेष, मोह टले ऐसा यत्न करना ही वास्तविक बडप्पन है। यह सिद्धि निज आत्मतत्त्वके उपयोगसे ही होती है। अत अपने जीवनमे यह बडी सुक्रान्ति लाना चाहिए कि अपने आपको अकेला, अशरण किन्तु अपने ज्ञानके कारण सशरण, ध्रुव, अखण्ड, सबसे पृथक् चैतन्यमात्र अनुभव करे ताकि परपदार्थोका कुछ भी परिणमन हो, उससे अपनेको चिन्ता व क्षोभ न हो।

प्रत्येक द्रव्य स्वतन्त्र है, शरीर अनेक परमाणुओका पिण्ड है। वे प्रत्येक परमाणु अपना-अपना ही सत्त्व रखते हैं। प्रत्येक जीव अपना-अपना अस्तित्व का ही मालिक है। किसी भी द्रव्यसे किसी अन्य द्रव्यका परिणमन नही होता। हा विभाव परिणमनमे अन्य द्रव्य निमित्तमात्र है।

ज्ञानका वैभव सत्य वैभव है, ज्ञानका शरण सत्य शरण है। ज्ञानका सुख सत्य सुख है। ज्ञानका ज्ञान सर्वोपरि ज्ञान है।

१३ जनवरी १९६०

किसी भी औपाधिक क्लेशके समय यद्यपि ज्ञानकी याद नही रहती, किन्तु ज्ञानी जीव शीघ्र ही ज्ञानकी प्रतीतिके बलसे ज्ञानमय आत्मतत्त्वकी ओर आकर सत्य आनन्दके अभिमुख हो जाते है।

कल्याणके लिये योग्यतानुकूल भावात्मक साहस करनेकी अत्यावश्यकता है। कुछ कल्याणकी ओर व कुछ विकल्पाश्रयोकी ओर प्रति दिन जो झुकाव चलता है वह उत्तम बात नही। इससे कुछ अच्छा तो यही होगा कि १०—५ दिन

विकल्पाश्रयोकी ओर झुक लिया तो ४-५ माह एकदम कल्याणाश्रयोकी ओर झुक लिया जाय।

वास्तवमे कल्याणाश्रय निज आत्मतत्त्व ही है जो कि मूल, परनिरपेक्ष, स्वत सिद्ध चैतन्यभावात्मक है। खैर जो बने सो ही ठीक है, मगर साहस बढानेकी आवश्यकता जरूर है।

वह मनुष्य अति दुर्लभ भव है। इसका ठीक उपयोग अब तक तो नही हो पाया, रही सही जिन्दगी यदि सफल हो जाय तो बस सब कुछ यही है।

१४ जनवरी १९६०

आत्माका उद्धार कहाँ करना है ? आत्मामे। आत्माका उद्धार किसको करना है आत्माने। आत्माने किसको उद्धृत करना है ? आत्माको। आत्माने किसके लिये उद्धृत करना है ? आत्माके लिये। वह उद्धार भी क्या है ? आत्मा स्वभावरूपसे जान लिया जावे और फिर उसही मे उपयुक्त हो जावे। यह कार्य है अत्यन्त सुगम है। कौन किसका है ? फिर किसीके प्रति राग और किसीके प्रति द्वेष यह विडम्बना क्यो लगा ली है ? किसने लगा ली, अज्ञानसे लग गई।

देखो भाई ! राग, द्वेष, सुख, दु ख तो कर्मके उदय होने पर होते है और ज्ञान (जानकारी) कर्मके उदयसे नही होता। तो जो कर्मके उदयसे होता है वह करतूत तुम्हारी नही, तुम्हारी करतूत तो ज्ञान है। तुम अपनी करतूत पर दम भरो और ज्ञाता होनेका पौरुष करो। इस विधिमे उद्धार अवश्य हो लेगा।

देखो करना क्या है— प्रवृत्तिमे तो अहिसाका पालन और निवृत्तिमे निज चैतन्यस्वभावके उपयोगका धारण। निजचैतन्य स्वभावमे उपयोग बनाये रहनेमे सत्य निवृत्ति है, क्योकि इस निज परमपारिणामिक भावकी उपासना से विकल्प शान्त हो जाते है और विकल्पोकी शान्ति ही सत्य निवृत्ति है। जब प्रवृत्ति करना पडे तो अहिसाके पालनका विशेष ध्यान देना चाहिए। अहिसा

का विशेष पालन परिग्रहके त्यागके साथ चलता है, ब्रह्मचर्यके साथ चलता है, अचौर्य व असत्य भाषणके त्यागके साथ चलता है।

अहिंसाका पालन व परमात्मत्वका उपयोग—ये दो ही काम जीवनमे करना है अधिक बात नही, दुर्गम नही, साहस करो, सफलता ही मिलेगी।

१५ जनवरी १९६०

आत्माका शुद्ध स्वरूप चैतन्य है। चैतन्यमात्र आत्माकतत्त्वको काल, शक्ति, क्षेत्र आदि कृत भेद द्वारसे निरखने पर जो पर्याय, गुण, प्रदेश आदि ज्ञात होते हैं वह अशुद्ध स्वरूप है। इसका परिणाम यह है कि अशुद्ध स्वरूपमे आत्माके देखे जाने पर विकल्प तरङ्ग होते है, बढते है। उन विकल्प तरङ्ग रूप ससार के क्लेशोसे मुक्ति चाहने वाले आत्माका कर्तव्य है कि वह स्वयको शुद्ध स्वरूप-मय देखे। इस शुद्ध स्वरूपका विवरण यदि कोई करानेको कहे तो उसको यही समझाना होता है कि आत्माका यथार्थ तत्त्व ज्ञान, दर्शन, सुख आदि गुणोसे परे है। नर, नारक, पशु आदि पर्यायोसे परे हैं।

इस उपादेय त्रिकाल निरावरण शुद्ध स्वरूपको सुरक्षित, सुगम बनाना दार्शनिकोको अभीष्ट था। इसकी पूर्ति किन्हीने तो द्रव्य गुण पर्यायको भिन्न भिन्न पदार्थ मानकर व इनका व्यवहार बनानेके भावसे सामान्य-विशेष-समवाय-अभावको भी जुदा-जुदा पदार्थ मानकर करना चाही है। उसकी पूर्ति किन्हीने चैतन्यको तो शुद्ध स्थापित कर व बाकी भेदादि विकारादि को प्रकृतिकी बला बताकर की है। उसकी पूर्ति किन्हीने क्षणिक भावको ही तत्त्व स्थापित कर सन्तान व व्यक्त अर्थको मिथ्या अङ्गीकार करके करना चाही होगी। उसकी पूर्ति किन्हीने मात्र निर्विकल्प ज्ञानको ही तत्त्व स्थापित कर अर्थ व अर्थकल्पना को मिथ्या कह कर करना चाही होगी। उसकी पूर्ति किन्हीने मात्र ब्रह्म सत्य कह कर सब भेदोको माया जाल कह कर करना चाही। उसकी पूर्ति किन्हीने स्वभाव (निश्चय) दृष्टिसे शुद्ध और व्यवहार (भेद, पर्याय) दृष्टिसे अशुद्ध बताकर करना चाही। इसमे तथ्य क्या है सो दर्शन शास्त्रोके अध्ययनसे विदित हो जाता है।

१६ जनवरी १६६०

समस्त मनुष्य कितने है ? सूच्यगुलके तृतीयवर्ग मूलसे गुणित प्रथम वर्गमूलका जगच्छ्रेणिमे भाग देनेसें जो लब्ध प्रदेश आवे, उनकी गणनाप्रमाण मे सिर्फ १ कम करके उतने सब मनुष्य है। इन मनुष्योमे भोगभूमिज मनुष्य, अन्तर्द्वीपत्र मनुष्य, कर्मभूमिज मनुष्य, लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य, सभी प्रकारके मनुष्य सम्मिलित है। यह उक्त प्रमाण समझनेके लिये भाज्य व भाजक राशिका विवरण इस प्रकार है—

भाज्य राशि — जगच्छ्रेणी है। सात राजू लम्बी क्षेत्र प्रदेश पक्तिको जगछ्रेणि कहते है। इसमे चौडाई मोटाईकी बिलकुल दृष्टि नही है। अतः यदि समझनेके लिये कोई विवरण चाहे तो एक प्रदेश चौडी मोटी प्रदेशपक्ति समझना चाहिये। इन प्रदेशोका प्रमाण अद्धापल्यके असख्यातवे भाग प्रमाण घनाङ्गुलो को परस्पर गुणित करनेपर जो लब्ध हो, उसमे जितने प्रदेश हो उतना है।

भाजकराशि — सूच्यगुलके प्रथम वर्गमूलसे गुणित सतीय वर्ग मूल प्रमाण है। जैसे सूच्यगुलके प्रदेश मानो २५६ है तो २५६ का प्रथम वर्गमूल है १६, द्वितीय वर्ग मूल है ४, तृतीय वर्ग मूल है २। अब प्रथम वर्ग मूल १६ × तृतीय वर्गमूल २ = ३२ भाजकराशि अर्थात् अवहार राशि है। यह भाजक राशि कई प्रकारसे निकाली जाती है, जिसमेसे कुछ प्रकार लिखे जावेगे।

१७ जनवरी १६६०

मनुष्य अवहारकाल जिसका जगच्छ्रेणीमे भाग देनेपर मनुष्य सख्या निकलती है—

(१) सूच्यगुलके द्वितीय वर्गमूलसे गुणित तृतीय वर्ग मूलका सूच्यगुलमे भाग देने पर। यथा— ४ × २ = ८, २५६ — ८ = ३२ अवहारकाल।

(२) सूच्यगुलके तृतीय वर्गमूलसे गुणित प्रथम वर्गमूल प्रमाण। यथा— २ × १६ = ३२ अवहार काल।

(३) सूच्यगुलके दूसरे वर्गमूलसे गुणित तीसरे वर्गमूलका सूच्यगुलके प्रथम

वर्गमूलमे भाग देनेपर लब्धसे गुणित सूच्यगुल प्रथम वर्गमूल प्रमाण यथा—
२×४=८, १६—८=२, १६×२=३२ अवहारकाल ।

(४) सूच्यगुलके द्वितीय वर्गमूलमे गुणित तृतीय वर्गमूलसे प्रथम वर्गमूल को गुणित करके लब्धका घनाङ्गुलके प्रथम वर्गमूलमे भाग देनेपर यथा—
२×४=८, १६×८=१२८, ४०९६—१२८=३२ अवहारकाल ।

(५) सूच्य गुलके प्रथम वर्गमूलसे भाजित घनागुलके प्रथम वर्गमूलके द्वितीय वर्गमूलसे गुणित तृतीय वर्गमूलका सूच्यगुलमे भाग देनेपर। यथा—
४०९६—१६=२५६, इसका द्वितीय वर्गमूल ४×२=८, २५६—८=३२ अवहारकाल ।

(६) सूच्यगुलके द्वितीय वर्गमूलमे गुणित तृतीय वर्गमूलसे गुणित प्रथम वर्गमूलसे गुणित घनागुल द्वितीय वगमूलसे घनाघनागुलके द्वितीयवर्गमूलके भाजित करनेपर। यथा— २×४=८×१६=१२८×१२४=१५८७२, ५०७९०४—१५८७२=३२ अवहार काल ।

(७) घनाघनाङ्गुलके द्वितीय वर्गमूलमे घनाङ्गुलके द्वितीय वर्गमूलका भाग देनेपर लब्ध (घनागुलका प्रथम वर्गमूल) मे, सूच्यगुलके प्रथम वर्गमूलसे गुणित द्वितीय वर्गमूलका भाग देनेपर। यथा— ५०७९०४—१२४=४०९६—१२८=३२ अवहारकाल ।

१८ जनवरी १९६०

(८) सूच्यगुलका द्वितीय वर्गमूल×तृतीयवर्गमूल×सूच्यगुलका प्रतरागुलमे भाग देने पर। यथा ४×२=८×२५६= २०४) ६५५३६ (३२ अवहार काल

(९) सूच्यगुल द्वितीय वर्गमूल×तृतीय वर्गमूल×प्रतरागुल से घनागुलके भाजित करनेपर। यथा— ४×२=८×६५५३६=५२४२८८, १६७७७२१६—५२४२८८=३२ अवहारकाल ।

(१०) सूच्यगुलद्वितीय वर्गमूल×तृतीय वर्गमूल×प्रतरागुल×घनाङ्गुलवर्ग का घनाघनाङ्गुलमे भाग देनेपर। यथा—४×२=८×६५५३६=५२४२२-८८×२८१४७४९७६७१०६५६=१४७५८३९५३८८९६७६४ १२९२८)४७२-

२३ ८६५८२७८८७४५२१२६६६।३२ अवहारकाल। इत्यादि और भी प्रकार है। इस अवहार कालका जगच्छ्रेणिमे भाग देनेसे लब्धमे एक कम करनेपर मनुष्यराशि का प्रमाण निकलता है। सो इसके निकालनेमे खडित, भाजित, विरलित व अपहृत इन चारो पद्धतियोका प्रयोग हो सकता है। इतनी असख्यात गणना सब मनुष्योकी है इनमे लब्ध्यपर्याप्त (जो अदृश्य ही होते है) मनुष्योको छोड कर बाकी पर्याप्त मनुष्योको देखा जाय तो १९८०७०४०६२ ८५६६०८४३९८३८५९८७५८४ इतने इतने पर्याप्त मनुष्य हो सकते है।

जरा सुननेमे तो सहसा ऐसा लगता है कि यह बहुत बडी राशि है, किन्तु चारो गतियोमे सबसे कम राशि इस मनुष्यगतिकी है।

१९ जनवरी १९६०

हे आत्मन्! तेरे अनन्तभव गुजर चुके, उसी सिलसिलेमे एक अब यह भी है जैसे अनन्तभव गुजरे वैसे ही एक यह भव भी गुजर जायगा और आगे भी तो सभव है भव होगे। तू इन अनन्तभवोमे से एक भव भी इस तरह नही बिता सकता है कि जहा नामकी जरा भी चाह न हो, किसी भी वैभवकी जरा भी चाह न हो, आरामकी भी चाह न हो? देख तू ज्ञानमय है, जो सिद्ध है सो ही तू है। तेरा नाम वहाँ चिपटा? तू अमूर्त निराकार एक ज्योतिर्मय पदार्थ है, इसका नाम क्या हो सकता, और, हो सकता तो वह हो सकता जिस नामको सुनकर यह समझमे आवे कि इस ज्योतिर्मय पदार्थको कहा जा रहा है सो इस नाममे सब ही ज्योतिर्मय पदार्थ आ गये। अब बताओ इस नामसे भी तू ही अकेला कैसे पकडा जायगा। अरे ससार बन्धनमे पडा हुआ वराक! वहिरात्मताको छोडकर अपने को ज्ञानमय ही अनुभवकर। अन्य सवसे मुख मोड, मात्र आत्माको ही देख, अपनेको ही देख। अथवा जो चाहे सो देख, किन्तु समझ तो सही तू किसमे तमन्मय है। वैभव भी क्या? पुद्गल स्कन्ध है वह तेरे परिणमनको क्या ठीक बना देगा। पुद्गलोसे तेरी क्या अटकी है। भोजनकी अटकी ऐसा भी न सोच, भोजनसे तो सवथा निवृत्त होनेमे ही आनन्द है। इस पर्यायके लिये जो आवश्यक

है वह तो तेरी चिन्ता बिना भी मिल सकता है। आराम क्या है ? यहाँ तो अनन्त दुःख हैं। भव भवमें तो घोर दुःख सहने पड़े, अब जरासा पुण्य पाकर इतराते हो। हे आत्मन्! अपनेमें आप छुप जावो बस इसीमें भला है।

२० जनवरी १६५०

व्रत विरतिको कहते है। कोई भी अन्य द्रव्य मेरी कोई परिणति नही करता है न तो वह सुधार करता और न बिगाड करता। विषयभावकी अपेक्षासे भी सुधार का आश्रयभूत तो परद्रव्य है ही नही, बिगाड़का आश्रयभूत चाहे कितना ही तो जावे, कभी-कभी सत्सङ्गके आश्रयसे सुधार होता है किन्तु वास्तविकता वहा भी यह है कि यदि सत्सङ्गका आश्रय किसी अच्छी बातके लिये है तो वह अच्छी बात शुभविकल्प ही है सो शुभ विकल्प अपेक्षाकृत अच्छा है, परमार्थ तत्त्व की उपलब्धिकी अपेक्षासे सोचो तो यह भी शुद्धिका बाधक है। अस्तु! तात्पर्य यह है कि परद्रव्यसे मेरा परिणमन नहीं होता, अत वह मेरा कुछ है भी नही। इसी तत्त्वज्ञानके कारण परद्रव्यसे सहज विरतिभाव ज्ञानीके होता है।

औपाधिकभाव भी मेरा नही है। मेरे स्वभावसे ही उत्पन्न हो वह स्वभाव भाव हो सकता है। औपाधिक भाव मुझमें होकर भी उनका अन्वयव्यतिरेक नियम मेरे साथ नही बनता। साथ ही ये भाव क्षणिक है, खैर, क्षणिक तो सभी परिणमन होते हैं किन्तु स्वभावपरिणमन के बाद वैसा ही स्वभाव परिणमन चलता है, विभावपरिणमन क्षणिक हैं। ऐसे क्षणिक भावोंकी रुचि कैसे हो सो ज्ञानीके परभावसे भी सहज विरति होती है।

२१ जनवरी १६६०

अन्य सिद्धान्तोमें से जिन्होने सुखके अभावको मोक्ष भी कहा है उनमे से कोई कहते है कि सुखमें सर्वोपरि सुख उपस्थ इन्द्रियका है। ऐसे ही कोई कहते हैं कि निद्रा अथवा सुषुप्ति ही कल्याण है किन्तु यह कहना उन्हीको इष्ट लगता है जिन्होने स्वानुभवमे होने वाले परम आह्लाद व शुद्धज्ञानका अनुभव नही किया। इन्द्रियजन्य सभी सुख आकुलतासे पूर्ण है, आकुलताके कारण होते है, आकुलताका सिलसिला बाँध देते हैं, किन्तु स्वानुभवका आह्लाद समता

के भाव (शान्तिके भावसे) पूर्ण है, शान्तिके कारण होते है, शान्तिका सिलसिला बाँध देते है। निन्द्रामे प्राणी अपना भी भाव खो देता है किन्तु स्वानुभवमे शुद्ध निर्मल ज्ञानका प्रकाश रहता है। स्वानुभवमे ज्ञानी ज्ञानघनात्मक निजतत्त्वका अनुभव होता है। इस ज्ञानीने जो निजकी सूझ की थी उसकी पूरी बूझ करके, निश्चय करके उसीमे रीझ जानेकी स्थिरता स्वानुभूति है। इस मे ज्ञानका चमत्कार प्रकट होता है। इस तरह नीदमे और स्वानुभूतिमे महान् अन्तर है। अधेरामे व सूयमे जो अन्तर है वैसे ही यहाँ अन्तर है। इन्द्रियज सुखकी रीझ तो महती बेवकूफी है।

हे आत्मन्! तू चैतन्यप्रभु है। अनादिमे संसरण करते हुए आज तू ने अपना भाव पाया है, अपना भानु पाया है अब तो एक रस होकर एकचित्त होकर निज सहज ज्ञानानन्दका रस पियो। सारे विकल्पोका वमन करके निजानुभूति अमृतका पान कर लो। यह मौका बार-बार नही मिलता।

२२ जनवरी १९६०

तू तेरी सत्तामात्र है। बता तुझमे अन्य किसका क्या है? जो तू करता है अपना करता है। बता क्या तू किसी, अन्यका भी परिणमन कर देता है क्या? अन्य कोई परिणमे वहाँ तू यदि निमित्त पडता है तो वहाँ तू निमित्तमात्र ही तो है। तू तो उससे भिन्न ही रह कर अपने आपमे वर्त रहा है। तेरा तेरेसे बाहर कुछ नही। फिर कुछ भी विकल्प क्यो आवे। विकल्प परको विषयकर उद्भूति पाते हैं। कभी आत्माको विषय करके भी विकल्प उद्भूति पाते है, वहाँ पर यह निज आत्मा भी परकी भाति है। जब जानने वाले ज्ञानके विषयमे यह आत्मा मात्र ज्ञानमुखेन आवे तो यह स्वको विषय करने वाला हुआ, इस स्थितिमे विकल्पोकी शान्ति है।

हे आत्मन्! तू परिपूर्ण है, स्वत सिद्ध है, तेरेको कुछ भी करनेको नही पडा। विश्रामसे रह। व्यवहारमे जो कुछ यहाँ ससारमे झक्काटासा लगता है वह तो घोर अधेरा है। अधेरेमे भटकने वालेकी खैर नही है। लोवृत्तिमे प्रवृत्ति करके रीझ जाने वालेकी भी खैर नही।

अपनेको देख तू ही सम्यक् है, एकरस होकर परिणमने व जानने वाला है। अपनेको देख तू ही सत्य है, त्रिकाल सत्मे रहनेवाला हे।

हे परमपारिणामिकभावस्वरूप चैतन्य प्रभो! तू ही शरण है, एक तू ही मेरे दृष्टिपथम रह।

२३ जनवरी १९६०

श्रीश, धीश, गिरीश, वीश ऋषीशके सहज विकासके ध्यानके प्रसादसे आत्मामे अलौकिक शक्तिका विकास होता है। यह जगत क्या है, जीवकी मलीमस पर्यायोंका विलास हे। यह सब अध्रुव है, नही ठहरेगा। इसके प्रति अभिमुख होकर विकल्पोंकी वृत्ति करना क्या विवेक है? इस जडताकी चिकित्सा करना ही उचित है अन्यथा सारा नुकसान ही नुकसान है।

चौरासी लाख योनियोमे परिभ्रमण करते हुए आज इस मनुष्य पर्यायमे आये। यहाँ बहुत उजेला लग रहा हे। प्राय सब समझमे आ रहा है, घवडाहट भी कुछ नही है, विपदाये भी कोई टूट नही रही हैं, मारपोट भी कुछ नही है, फिर भी निर्मलता न लाई जा सके तो अवसरका माहात्म्य न समझनेसे जडता ही सी तो रही। अरे इस अधेरगर्दीका फल तो महान् भयावह है।

कल्याणके लिये करना क्या? करना यह है कि जैसा मेरा सत्य निरपेक्ष सहज स्वरूप है तैसा ही मेरी दृष्टिमे रहे। ऐसा करनेके लिये दो बात चाहिये है— (१) स्वरूपज्ञान, (२) परोपेक्षा जिसमे विषयोपेक्षा, वैराग्य आदि अर्थ गर्भित है। स्वरूपज्ञानके लिये तो वस्तुस्वरूपका अध्ययन व उसका अभ्यास आवश्यक है और परोपेक्षाके लिये विज्ञान निजस्वभावके परम उपयोगसे उत्पन्न हुए परम आनन्दका अनुभव आवश्यक है।

२४ जनवरी १९६०

भर पेट भोजन आत्मप्रगतिका बाधक है क्योंकि इस स्थितिसे उभय प्रमाद होता है। भरपेट भोजन भी स्वरूपकी असावधानी होनेपर किया जाता है। पौना पेट ही भोजनमान होना ठीक है।

जैनदर्शनमे प्रतिपादित वस्तुस्वरूप व्यवहार दृष्टि, परमार्थ दृष्टि, साव्यवहारिक प्रत्यक्ष, युक्ति, अनुभव आदि विज्ञानोपायोमे खरा उतरता है और इस अवगमके बाद मोक्षमार्ग, शान्तिमार्ग स्पष्ट प्रतिभास होजाता है कि यह है मोक्ष, यह है मोक्षकी प्राप्तिका उपाय और यह इस प्रकार अत्यन्त सुगम है।

अहो, मैं क्या-क्या तो कर पाता हू और क्या-क्या करना मान लेता हूँ। प्रत्येक पदार्थ स्वत सिद्ध है और स्वत परिणामी है। इससे यह भी स्पष्ट है कि कोई भी पदार्थ न परसे सिद्ध (निष्पन्न) है और न परसे परिणमता है।

प्रिय आत्मन् ! अपनी दृढ उपासना करो। जगत्को क्या देखते हो ? जगत्को देख देख करके ही तो जो गत बना ली है, अब जागत क्यो नही, जगत्की दृष्टि हटा। देख, निजमे लगत ही व निजमे पगत ही जगतके सब सकट भगत फिरेंगे। देख बावरे विषय सामग्री पाकर तुम समझते हो कि हम दुनियाको ठगत है किन्तु अपनेको ही ठगत जात इसका—

२५ जनवरी १९६०

जीवका शरण स्वय जीव ही हो सकता है। उस शरणकी ३ कक्षायें है—
१— सहज निरपेक्ष परम पारिणामिकभावकी दृष्टिसे देखे हुए निज आत्माकी श्रद्धासे सम्पन्न स्वय। २— सहज परमात्मतत्त्वके श्रद्धान, ज्ञान व अनुष्ठानकी एकता रूप अभेद रत्न त्रयसे परिणत कार्य समयसारके शुद्ध स्वरूपकी आराधनामे उपयुक्त स्वय। ३ — निज कारण समयसारके आलम्बनसे व्यक्त शुद्धरत्नत्रयसे परिणत स्वयं।

यह प्राणी अनादिकालसे परिवर्तनके चक्रके बीचमे रहकर कितना-कितना भ्रमजनित वैषयिकी तृष्णाका क्लेश सहता आया है जिसपर रच भी दृष्टिपात करनेसे शस्त्रघात के समान अन्तरमे आघात होता है। अहो कहा तो आत्माका महान् विशुद्ध स्वरूप और कहाँ निजकी भूलसे यह अनन्त आपदा।

हे आत्मन् ! तू अपनेको सत्य-सत्य तो पहिचान। हे आत्मन्। न तो कोई कष्ट है और न कोई चिन्ता। सबकी स्वतन्त्र-स्वतन्त्र सत्ता निरख जिससे यह दृढ धारणा करले कि किसी भी पदार्थका कोई अन्य पदार्थ न तो कर्ता है, न

भोक्ता है, न स्वामी है और न अधिकारी है। एकका दूसरा कुछ भी सम्बन्धी नही है। किसी भी पदार्थका लक्ष्य करके राग, द्वेष, मोह करना महती बेवकूफी है।

२६ जनवरी १९६०

आज भारतका स्वतन्त्रता दिवस है। आत्माका स्वतन्त्रता दिवस वह है जब निजस्वातन्त्र्यपर आत्माकी दृष्टि होजाय। आत्मा ही क्या, सभी द्रव्य स्वतत्र है, स्वत सिद्ध हैं, उनमे हो आत्मातिरिक्त अन्य सभी पदाथ अचेतन हे। उन अचेतन पदार्थोंमे से धर्मद्रव्य, अधमद्रव्य, आकाशद्रव्य व कालद्रव्य—ये चार तो स्वभाव परिणति ही करते हैं, केवल पुद्गल द्रव्य ऐसा है जो विभाव-परिणति भी करता है। सो पाचो अचेतन है, उन्हे कुछ भी परवाह हो ही नही सकती। केवल आत्मद्रव्य ही चेतन है। चेतना सामान्य विशेषात्मक है। सामान्य चेतनामे तो उपद्रव है ही नही। विशेष चेतना ज्ञानात्मक है। ज्ञान स्वाभिमुख होकर भी जानकारी करता है व पराभिमुख होकर भी जानकारी करता है। स्वाभिमुख जानकारीमे भी उपद्रव प्रसर नही है। केवल पराभिमुख जानकारीमे उपद्रव फैलते है और यहा ही परतन्त्रता है। यह परतन्त्रता भी जीवने स्वतन्त्रतासेकी। यदि यह जीव अपनी स्वतन्त्रताका उपयोग परतन्त्र रहनेमे न करे और स्वतन्त्रताके लिये स्वतन्त्रताका उपयोग करे तो जिस क्षण इस स्वतन्त्रताकी दृष्टि व चर्चा हो जाय वही स्वतन्त्रता दिवस है।

२७ जनवरी १९६०

आज श्री देवाधिदेव भगवान् श्री ऋषभदेवका निर्वाण दिवस है। कुछ कम एक कोडाकोडी सागर पहिले माघवदी १४ के दिन कैलाश पर्वतसे श्री ऋषभदेवका निर्वाण हुआ था। श्री ऋषभदेव तीर्थङ्कर अपने समयमे सर्वप्रिय व सर्वोपकारी थ। बडी जटिल समस्याओसे विपन्न प्रजाजनोका श्री ऋषभदेवने उद्धार किया। ससारबन्धनबद्ध करोडो मानवोका श्री ऋषभदेव के दिव्योपदेशसे आत्यन्तिक उद्धार हुआ। अनेको पशुवो व पक्षियोको तथा सुर एव असुरोको श्री ऋषभदेवके दर्शन और उपदेशसे ब्रह्मप्रकाश मिला।

ये देव इस धर्मयुगके आदि नायक थे। अत इन्हे आदिनाथ भी कहते हैं। इन देवके प्रसादसे प्रजाजनोका जीवन साधन चला, अत इन्हे ब्रह्मा भी कहते हैं। इन देवका योगावस्थामे व सकलपरमात्माकी अवस्थामे निवास विशेषतया कैलाश पर्वत पर रहा, अत इन्हे कैलाशपति भी कहते है। प्राय. सभी आस्तिक मानवोने किसी न किसी रूपमे इनकी उपासना की है। गणेशपरिवृत, भव्य-शकर, श्रीऋषभ महादेवका भक्ति प्रसाद सबका अनुग्रह करे। ॐ श्री ऋषभ-देवाय नमो नम। ॐ परमब्रह्मणे नमो नम। ॐ तत् सत् परमात्मने नम।

२८ जनवरी १९६०

हम जीवोकी दृष्टिया ३ स्थानोमे विशेष रहे तो अच्छा है— (१) मैं अनाद्यनन्त ध्रुव चैतन्य स्वरूप हूँ। (२) मै परिणमनशील हू सो सदासे परिणमता आया हूँ किन्तु उन परिणमनोमे से दूसरे क्षण भी कुछ नही रहा और परिणमता रहूगा सो उन परिणमनोमे से भी दूसरे क्षण वह कुछ भी नहीं रहेगा और अब जिस रूप परिणमन हो रहा है, लो, वह तो इतना ही सोचसे ही मिट गया। तात्पर्य यह है कि परिणमन दूसरे क्षण भी नही रहते। अतः मेरी किसी भी परिणमनमे रुचि नहीं है और न हो, क्या करेंगे रुचि करके रहना तो वह हे नही और न वह स्वरूप है, फायदा भी कुछ नही। पर्याय रुचिमे तो नुकसान ही नुकसान है। (३) अरहत सिद्धका जो स्वरूप है वह शुद्ध स्वरूप ध्यानमे आता रहे, क्योंकि वह स्वरूप स्वभावसे पूरे मेलका है। जैसे स्वभावजल व निर्मलजलका स्वरूप एक है, आविर्भाव तिरोभावका फरक है, इसी तरह जीवस्वभाव व मुक्त जीवका स्वरूप एक है, आविर्भाव तिरोभाव का फरक है।

२९ जनवरी १९६०

जितने भी ज्ञान है वे चाहे सशयित हो, चाहे विभ्रान्त हो, चाहे अनध्य-वसित हो, सभी स्वसवेदनकी अपेक्षा अर्थात् भावप्रमेयकी अपेक्षा प्रमाणरूप है, क्योंकि सभी ज्ञान अपनेको सम्यक् समझते है अन्यथा सशय विभ्रम आदि रूप प्रवृत्ति नही हो सकती। ऐसा कौनसा विपर्यय ज्ञान है जो अपनेको यह समझे

कि यह विपर्यय ज्ञान है। यदि किसी विपर्यय ज्ञानने यह समझ लिया कि यह विपर्यय ज्ञान है तो वह विपर्यय कहा रहा ? ऐसा होता ही नही है कि विपर्ययपना हो और अपनेको विपर्यय वाला समझता रहे। हा उत्तर क्षणमे यह ज्ञान हो सकता है कि पहिला ज्ञान विपरीत था सो बाह्य प्रमेयकी अपेक्षा पहिला तो विपरीत था, उत्तरका सम्यक् है सो पहिला तो अप्रमाण था व उत्तरका प्रमाण है। परन्तु भावप्रमेयकी अपेक्षा सब ज्ञान प्रमाण हैं। इसी आधार पर किन्होने निर्विकल्प सवेदनको ही प्रत्यक्ष कह कर प्रमाण माना है और विकल्पक ज्ञानोको अप्रमाण माना है तथा इसी पद्धतिमे आगे बढ कर बाह्य पदार्थोंको असत् मान लिया गया है, इसी आधार पर तत्त्व केवल ज्ञानाद्वैत स्थापित किया है। सार तो इसमे यह था कि प्रत्येक ज्ञान स्ववेदनमे अभ्रान्त होते है।

वस्तुत यह ज्ञानात्मक पदार्थ अर्थात् जीव जो कुछ कर सकता है वह अपनेको ही कर सकता है, इस न्यायसे जानता भी अपनेको ही है। विषयोका विषयमे उपचार करनेसे पदार्थको जाननेका व्यवहार हो जाता है। इससे शिक्षा यह मिली कि ज्ञाताका ज्ञेय अर्थसे सम्बन्ध नही है।

३० जनवरी १९६०

कल शिखरजी ईसरीमे शार्ट रास्तेसे चलकर आये, जो रास्ता करीब ७ मीलका बताया जाता है परन्तु समय व श्रम उतना ही लगा जितना कि एक दूसरे शार्ट रास्तेसे, जो कि १० मील है चलकर लगता। जैसे हापटा वाले विषयमार्गमे चलनेकी अपेक्षा विशदमार्गसे चलना, जिसमे चाहे कुछ देरी भी लगे अच्छा है, इसी तरह हापटा वाले एकाङ्गी अथवा यहाँ-वहाँके कुछ स्थलोकी विद्याके अभ्याससे क्रमिक, विशद उपाय वाली पद्धतिमे विद्याका अभ्यास करना अच्छा है चाहे इसमे कुछ समय भी लगे।

किसी भी जीवका कोई अन्य जीव न तो मित्र है और न शत्रु है। प्रत्येक जीव मात्र खुदको ही सत्य अथवा असत्य मित्र बना सकता है व खुदको ही शत्रु बना सकता है। जब अपना परिणाम अपने सहज सिद्ध रूपको विषय

करता हुआ होता है तो उसका वह निजी परिणाम ही उसका सत्य मित्र है। जब अपना परिणाम इन्द्रिय विषय भोगनेके लिये होता है और उस भोगोपभोगकी कल्पनामे आश्रयभूत बाह्य पदार्थ होता है, यहा अपने उस परिणाममें ही वास्तवमे वह रुचि करता है और अपने उस परिणामके कारण हो अपनेको सुखी समझता है। अत वास्तवमे तो अपना वह परिणाम ही अपना असत्य मित्र हो रहा है। अब और आगे देखो जो उस सुहाव परिणामका आश्रयभूत पदार्थ है उसके अभिमुख दृष्टि होनेके हेतु उपचारसे अन्य जनादिको को मित्र कहा जाता है वे भी असत्य (अहितकर) मित्र हैं। जब जीव अपना परिणाम द्वेषरूप करता है तो वह द्वेष परिणाम ही अपना शत्रु है। उस द्वेष परिणाम का आश्रयभूत अन्य जनादिक उपचारसे शत्रु कहा जाता है।

३१ जनवरी १९६०

यह संसार गहन जाल है। इस प्राणीको कदाचित् धर्म मार्गका दर्शन भी हो जाय तो भी विषय कषायमे बचनेका मार्ग नाना ढूढता है। कभी सोचा जाता है कि अत्यन्त एकान्त स्थानमे आत्मसिद्धि की जाय। कुछ एकान्त स्थान का आश्रय कर लेनेके बाद सोचा जाता है कि मनको तो प्रतिक्षण कार्य चाहिये सो जनतामे रहकर गुजर कर तत्त्वदर्शनके यत्न आदि द्वारा सेवा करते हुए आत्मध्यान, ज्ञान आदि करके जीवन बिताया जाय। कभी कोई सोचता है कि कीर्तिसपादनके उपकार काम करके समाजमे स्थान अच्छा रखकर अनेक सकटोसे बचते हुए तथा बड़प्पनकी बात देखते सुनते हुए, बीच-बीच निसग आत्मतत्त्वकी उपासना भी जाती जाय। कभी सोचता है कि किसीसे व्यवहार व्यवहार रखकर अपना कौनसा परिणमन दूसरेके द्वारा सुधरेगा? कुछ भी नहीं, फिर सम्बन्ध हो क्यो कुछ रखा जाय। इत्यादि नाना विकल्पोकी उपपत्ति होती और लक्ष्यसे भी च्युत नहीं होता। ऐसी स्थिति भी एक विचित्र स्थिति है। अहो संसार गहन जाल है।

१ फरवरी १९६०

आज वसत पचमीका दिन है। अर्थात् वसन्त ऋतुके सुहावने हरे-भरे फल

फूलोको अवमर आने देनेकी रोकका अन्त है। यद्यपि बसन्त ऋतु फागुनके अमन्तर शुरु होता है, फिर भी ऋतुकी आदिमे जो स्थिति उत्पन्न है उसकी तैयारी ४५ दिन पहिले होने लगती है। जैसे सम्यक्त्वमे जो स्थिति है उसकी तैयारी नियमरूपमे अन्तर्मुहूर्त पहिले होने लगती है, स्थूलरूपमे प्रायोग्य लब्धि से और स्थूलरूपमे देशनालब्धिसे, और स्थूलरूपमे विशुद्धिलब्धिसे, और स्थूल-रूपमे क्षयोपशयलब्धिसे तैयारी होने लगती है। विशेष यह है कि प्रायोग्योप-लब्धि तक की तैयारी फेल भी हो सकती है, पास भी हो सकती है, किन्तु करणलब्धिकी तैयारी फेल नही होती है इसी कारण नियमरूपकी तैयारी अन्तर्मुहूर्त पहिले होती है।

परिणामोकी विशुद्धि निरन्तर रखना कर्तव्य है। निज सहज स्वरूपकी खबर या प्रतीति सदा रहे इससे ही हितमार्ग मिलता है। मैं सहज सिद्ध, सदा-शिव अन्त प्रकाशमान चेतन हू। मुझ चेतनको ही तरह समस्त चेतन है। मैं परिणमनशील हूँ। मुझमे प्रतिक्षण नये-नये परिणाम होते रहते है। वे सब परिणाम दूसरे क्षण नही होते, दूसरे क्षण नये परिणाम होते है। जो परिणाम दूसरे क्षण भी नही ठहर सकते उनमे भी विभाव तो परापेक्ष जीवी हैं। ऐसे अटपट विकट प्रकट सकटमय परिणामको निजस्वरूप रूपसे अनुभवनेवाला जीव अपने स्वरूपको भूलकर दुखी होता है सो उसको दुख आना प्राकृतिक बात है। पर्यायबुद्धिको छोडकर सहज शुद्ध चिन्मय अपनेको अनुभवता हुआ सर्व सकटोसे दूर हो जाता है।

२ फरवरी १९६०

जीवका हित स्वदयामे है। जिसने अपनी यथार्थ दया नही की, वह अगले भवमे कीट, मकोडा हो जायगा तो फिर वहा लौकिक दया, प्रतिष्ठा आदि की भी शफल नही सकता। वहाँ कहा तो परोपकार हो सकता है और कहाँ प्रतिष्ठा हो सकती है ? अपनी दया तो मोह, राग व द्वेष इन विभावोके टल जानेमे है। मोह टलेगा सत्य विवेकसे। सत्य विवेक हो जाने पर यथाशीघ्र राग व द्वेष भी टल जायेगा। सत्य विवेक यह है कि प्रत्येक पदार्थ निज-निज स्वतन्त्र

सत्तावान् है, फिर इस स्वरूपके अनुकूल ही सबको स्वतन्त्र-स्वतन्त्र सत्तावाला निरखे, यथार्थ निरखको ही विवेक कहते है।

किसी भी पदार्थका कोई अन्य पदार्थ न तो कर्ता है, न भोक्ता है, न स्वामी है और न अधिकारी है, क्योंकि प्रत्येक पदार्थ स्वय स्वतन्त्रवत् है। जगतका यह सब परिणमन स्वतन्त्र-स्वतन्त्र निज-निज द्रव्योमे है। हा यह बात अवश्य है कि स्वरूपविरुद्ध परिणमनको यह जीव या पुद्गल नाना अन्य योग्य पदार्थोंको निमित्त पाकर कर लेते हैं सो इसमे परिणमनेवाले पदार्थकी विशेषता का उपयोग हो रहा है। यद्यपि इस प्रकरणमे निमित्तभूत व आश्रयभूत पदार्थ भी इस योग्य चाहिये और उस योग्य होते है, तब उनका निमित्त पाकर परिण-मने वाला यह जीव या पुद्गल विभावरूप परिणम लेता है तथापि निमित्त भूत व आश्रयभूत पदार्थ तो मात्र अपनी-अपनी ही क्रियाको स्वतन्त्र होकर कर रहे हैं। अत. उपादानमे परिणमनेके मर्मकी विशेषता उपादानमे विदित है। वैसे तो सभी पदार्थ अपने-अपने स्वरूपमे ही उपादान व उपादेय हैं, किन्तु निमित्त नैमित्तिक भाव पद्धतिसे देखे जानेपर जिसका परिणमन हुआ वह तो उपादान और अन्य वे पदार्थ जिनकी उपस्थिति बिना वह कार्य नही हो सकता था वे सब निमित्तभूत है।

३ फरवरी १९६०

मोक्षमार्ग पर चलना सरल है तब जब परद्रव्यसे विभक्त निज एकत्वमय आत्मतत्त्वमे गाढ रुचि हो जाय। निज आत्मस्वरूपको आत्मा मान लिया गया दृढतासे, इसका चिह्न यह है कि निजाधिसित शरीर, निज भूमिकोदित रागादि भाव, विकल्प वगैरह सर्व परपदार्थ एव परभाव भिन्न भासने लगे, उनका ज्ञातृत्व भर रहे परपरिणतिमे हर्ष विषाद न उत्पन्न हो।

जगतमे सार क्या है? कुछ भी नही, एक आत्मतत्त्व ही आत्माके लिये सार है। अपनेमे शान्ति है, किन्तु वह अपनेको ही स्वरूपचिन्तन मथानीके द्वारा मथानेसे प्रकट होगी। परको मथनेसे अर्थात् परके सग्रह व परके विग्रह करनेसे शान्ति कभी भी प्रकट नही हो सकती है। दहीके बिलोनेसे ही घृत निकलता

है, पानीके बिलोये जाने पर घत कभी भी नही निकल सकता। जो तत्त्व पानी मे नही वह पानीके मथनेसे कैसे निकलेगा। जो तत्त्व परमे नही वह परके सग्रह या विरोधसे कैसे मिलेगा ? शान्ति आत्माकी आत्मामे ही है, वह आत्मोपयोगसे प्रकट हो जाती है। मेरी शान्ति मेरेसे भिन्न अन्य किसी भी पदार्थमे नही सो उनका कुछ भी मथन किया जाय अथवा परका तो मथन परके द्वारा किया ही नही जा सकता। फलत मैं किसी अन्य पदार्थको मथ ही नही सकता। हाँ अन्य पदार्थका लक्ष्य करके विकल्परूपमे अपनेको मथ सकता, सो ऐसे पराश्रित विकल्पोके मथनसे भी शान्ति प्रकट नही हो सकती। शुद्ध, शान्त, निरञ्जन, सहज चैतन्यभावके उपयोगसे ही शान्ति प्रकट होती है।

४ फरवरी १९६०

देव तो होते हैं परन्तु कोई कुदेव नही है। हा जो देव नही है वे भी हैं उन्हे देव नही कहा जा सकता किन्तु और कुछ तो कहा जा सकता, कुदेव नही कहा जा सकता। कोई जीव देव तो है नही और उसे देव मानने लगे कोई, तो विवेकीजन वहाँ कुदेव शब्दका प्रयोग करते हैं। उसे कुदेव कहलानेके लिये मूढ पुरुषके आग्रहने मान कराया है। मूढ पुरुषके अभिप्रायको ही वहाँ कुदेव कहा गया समझे। जिसके लिये कुदेव कहना पडा व तो जो है सो ही है, कुदेव नही है।

इसी प्रकार गुरु तो होते हैं परन्तु कोई कुगुरु नही होता। हाँ, जो गुरु नही हैं वे भी हैं, उन्हे गुरु नही कहा जा सकता किन्तु और कुछ तो कहा जा सकता है। कोई पुरुष गुरु तो हैं नही और उसे गुरु मानने लगे कोई, तो विवेकीजन वहा कुगुरु शब्दका प्रयोग करते है। उसे कुगुरु कहलानेके लिये मूढ पुरुष (मूढ भक्त) के आग्रहने यत्न कराया है। मूढ पुरुषके अभिप्रायको ही वहा कुगुरु कहा गया समझें। जिसके लिये कुगुरु कहना पडा वह तो जो है सो ही है, कुगुरु नही है।

इसी प्रकार शास्त्रकी भी बात है। वाक्य तो अपना वाच्य प्रकट कर देते है। उन वाक्योको जब धर्मरूपसे माननेकी बात अर्थात् धर्ममार्गको बताने वाले

हैं, ऐसा प्रकट करने व समझनेका प्रक्रम होता है तब उसमे जिन शास्त्रोका अर्थ धर्ममार्ग प्रकाशक होता है वे शास्त्र कहलाते हैं और जिन शास्त्रोका अर्थ धर्ममार्ग विरोधक होता है वे कुशास्त्र कहलाते है।

समता एव प्रज्ञाकी जय।

५ फरवरी १९६०

आज तीर्थराज सम्मेद शिखरजी की वदना सानन्द निर्जल उपवास सहित हुई। टोकोके दर्शन करते हुए यह भावना रही कि विभाव परिणामोका, कर्मो का, शरीरका सम्बन्ध सर्वथा हट कर विलय होऊ, धन्य है इन महामुनियो व मुनीश्वरोको, जिनकी परिणति सर्वथा शुद्ध हुई।

जो कुछ करो अपने लिये करो अर्थात् आत्माकी समाधि अवस्था पानेके लिये करो। वैसे करते तो हो सब अपने ही लिये फिर व्यर्थ कल्पना ही उल्टी क्यो करते हो और उल्टी कल्पना कर करके क्यो आकुलित होते हो ?

हे निज प्रभो ! तुम जो करते हो अपना ही परिणमन करते हो। तू अपने से भिन्न किसी भी पदार्थका कुछ कर ही नही सकते। यथार्थ विवेक तो करो— तू न किसी परपदार्थका कर्ता है, न किसी परपदार्थका भोक्ता है, अत एव न किसी परपदार्थका स्वामी है और न किसी परपदार्थका अधिकारी है।

हे निज देहदेवालयस्थ सहजसिद्ध परमदेव ! तू ससारके सब पदार्थोमे उत्कृष्ट पदार्थ है, अनुपम तत्त्व है। अपनी खबर भूलकर तूने ही यह विडम्बना बनाली है। एक दहाडकर अर्थात् स्वरूपकी आराधना कर तो यह सब विडम्बना क्षणमात्रमे ही समाप्त हो सकती है।

ॐ नमो दिव्यतेजोमूर्तये। ॐ ॐ ॐ।

६ फरवरी १९६०

हे आत्मन् ! तू प्रभु है, समर्थ है। जैसा तेरा स्वभाव है उसही अनुरूप परमोत्कृष्ट ऐश्वर्य पावे ऐसी तुझमे सनातन प्रभुता है। बाह्य समागम क्या है ? असमानजातीय द्रव्यपर्याय व समानजातीय द्रव्यपर्यायोका समागम है। ये सब पर्यायें मिटने वाली है, इनका समागम शीघ्र मिटने वाला है। यह सब

परिकर तेरा साथी नही है, न तो यह तेरे सुख दु खमे साथी है और न तेरे जन्मान्तरमें पहुँच भी जावे इतना भी साथी है। इस चराचर परिकरके प्रति विकल्प उत्पन्न करके जो भी भ्रमवश सुखकर मान रखा है वह सब तेरे घात का कारण है। चैतन्यका स्वभाव प्रतिभासमात्र है। इसका तिरस्कार करने वाले विभावोका जो-जो कुछ आश्रयभूत होता है वह सब इस चेतनका घातक न कहा जाय तो क्या साधक कहा जावे ? वस्तुत: तो विभाव विकल्प ही बाधक हैं, किन्तु विभाव विकल्प परको आश्रयभूत किये विना उत्पन्न नही होते, इस कारण उस आश्रयभूत परवस्तुको भी उपचारमे बाधक कहा जाता है। इन समागमो और विभावभावोमे हित नही है। कठिनाईसे मनुष्यजन्म पाया है। इस नर भवमे ऐसी पात्रता है कि यहाँ बसता हुआ यह आत्मा मोक्ष-मार्गकी साधना कर सकता है।

७ फरवरी १९६०

जो मार्ग उद्देश्य प्राप्तिके लिये निष्कण्टक जचता हो उस मार्गका अनु-सरण करना सच्चे पथिकका कर्तव्य है। अपना उद्देश्य होना चाहिये अनन्त-सुखमय स्थितिमे स्थित होनेका। उसका मार्ग है सहज सुखमय अपने आपके स्वभावकी उपासना करना। इस मार्गमे कण्ठक है राग, द्वेष, मोह, विकल्प आदि विभाव परिणमन। सो ऐसी स्थिति बने जिनमे राग, द्वेप आदि कण्ठको का प्रसार न हो, प्रत्युत ये कण्ठक जहाँ प्रत्यस्तमुख हो जायें। ऐसी स्थितिमे चलनेसे उद्देश्यकी प्राप्ति होगी।

भावोमे मलीनता न आवे ऐसे उपयोगसे बढकर और कुछ वैभव नही है। यदि भावोमे मलीनता बरती तो इससे बढकर और कुछ हानि नही है।

ॐ शुद्ध चिदस्मि। शुद्ध चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम्। निर्मलताके लक्षण ये हैं--

(१) किसी भी परद्रव्यमे आत्मीयताकी बुद्धि न हो, किन्तु स्वतन्त्र-स्वतन्त्र सत्तामय प्रत्येक पदार्थको समझे।

(२) किसी भी जीवको किसी भी प्रकारसे सतानेका भाव न हो, किसी

को अनिष्टकारी न समझे।

(३) अहितकर व असत्य सभापण न करे।

(४) किसीकी अधिकृत वस्तु, राज्यकर आदिको न छुपावे, न चुरावे।

(५) ब्रह्मचर्यके विरुद्ध विकारभाव न आने पावे।

(६) परिग्रहमे शान्ति, सुख व सन्तोषका अनुभव न करे।

(७) परमात्मस्वरूपका व आत्मस्वभावका समय-समयपर स्मरण होता रहे

८ फरवरी १९६०

आत्मामे ससारावस्थाके जो भाव (विभाव) हैं वे सब जीवमे होकर भी पौद्गलिक हैं क्योकि विभावोका अन्वयव्यतिरेक सम्बन्ध पुद्गलकर्मके साथ है अर्थात् पौद्गलिक कर्मोके उदयादि होनेपर ही हो और उसके उदयादि न होने पर न हो, ऐसे भाव पौद्गलिक है। यही एक मर्म है कि परिणमन तो जीवका है फिर भी पौद्गलिक है।

हे आत्मन्! विषय कषाय परिणाम तेरे नहीं है, तू इनमे रुचि क्यो करता है? तू तो ध्रुव चैतन्यमात्र है। अपने घर बस तो, भटकना खतम हो जायगा। यदि पर घर बसते रहनेका श्रम करेगा तो दर दर भटकता ही रहेगा।

किसीसे प्रेम आदर पानेकी कामना पर्यायबुद्धिमे होती है। जब तक पर्याय बुद्धि है तब तक वह मिथ्यादृष्टि है। जब तक मिथ्यादृष्टि है तब तक ससार प्रसार है। जब तक ससार प्रसार है तब तक महती- आकुलता विपत्ति है। यदि तू आकुलता विपत्ति नही चाहता है तो परपदार्थसे कुछ भी आशा न करके अपने आपमे मग्न रह। ॐ तत् सत्

९ फरवरी १९६०

जनसमागममे निर्णीत अल्प समय ही रहना व शेष समयका ज्ञानोपासनामे उपयोग करना, यह चर्या हो त्यागीकी होना चाहिये।

दिगम्बर जैन धर्मके नाम पर भी कई पन्थ होने लगे है। उन अनुयायियो को यदि विशुद्ध वृत्तिकी बात समझाये तो सभव हैं परस्पर कलह होने लगे अथवा समझानेवालेको विवादके कारण रागद्वेपमे लिपटना पडे और यदि नही

समझाई जाती है तो यह दोष सभावित है कि हितकी वात जानते हुए भी न बतायी । इस समस्याका हल क्या है ? इस समय जो मुझे जच रहा है वह व्यक्त करता हू — कि किसी भी स्थानपर निवास कालमे एक वार थोडे समयमे तत्सम्बन्धी हितकी वात आवश्यकता हो तो कह दी जावे किन्तु उसे फिर दुबारा न कहे और उसी समयमे यह बता देवे कि "इस वारेमे मैं दुबारा कुछ नही कहूगा, कारण कि दुबारा तिवारा कहनेसे इसका आग्रह करनेमे मेरा उपयोग हो सकता है जिससे राग द्वेषकी वृद्धि हो सकती है । मेरा यह अल्प जीवन वहिर्मुखी दृष्टिमे रहकर बरबाद न हो जाय इस कारण राग द्वेष मुझे पसन्द नही, किन्तु कहना इस लिये पडा कि कोई हितकी वात जो मैं जानता हूँ उसे मुमुक्षुवोको बिल्कुल भी प्रकट न करूं तो निह्नवदोष लग सकता है" ।

प्रकृत समस्याका उक्त हल ठीक है या नही ? मैं पक्का कुछ नही कह सकता हू किन्तु इस समय जची हुई वात ही व्यक्ति की है ।

१० फरवरी १९६०

शान्ति स्वयमे है, शान्तिका उपाय स्वयमे है, शान्तिका माद्दा स्वयमे है, शान्तिका स्वरूप स्वय है । शान्तिका उपाय सुगम है । यथार्थज्ञान करके वैसा ही ज्ञाता द्रष्टा रहना शान्तिका अमोघ उपाय है ।

इस असार नश्वर पौद्गलिक समागममे मुग्ध होकर जीव अपना घात कर रहा है यह महान् खेदकी वात है । मिथ्या आशयोके परिणामस्वरूप जब कीट, स्थावर शरीरका वन्धन होजायगा तब रे प्रिय आत्मन् ! तू बुद्धिहीनसा रहकर क्लेश भोगेगा, इसका भी तो कुछ ख्याल कर ।

हे प्रभो ! इस मनुष्यभवसे वढकर भी कोई अन्यभव है क्या, हा यह वात तो ठीक है कि इससे भी उत्तम मनुष्यभव मिले तो वहाँ धर्मसाधन हो सकता है, किन्तु यदि इसी मनुष्यभवमें प्रमत्त होकर अज्ञान परिणामोका आदर किया, मस्ती की तो वतावो दुर्गति ही पावोगे, उत्तम मनुष्यभवकी आशा ही क्या प्रत्युत दुर्गति हाथ आवेगी ।

देख ! सम्यक्त्वसे वढकर कुछ वैभव नही । सम्यक्त्वकी वृत्तिके लिये बाह्य

समस्त अर्थोंकी उपेक्षा करनी होगी। उपेक्षा करनेमे कष्ट क्या, आखिर सब पर ही तो है। उनसे कुछ अपना होना जाना तो है नही। तू तेरे सिवाय किसी का भी तो स्वामी नही, अधिकारी नही, कर्ता नही, भोक्ता नही।

रे प्यारे ! मूर्खता न कर, नर भव रत्न यो ही न गमा दे। सत्यसे प्यार कर।

११ फरवरी १९६०

आज दुनियामे लोग महापुरुष बनकर नाना कार्य कर रहे है। कोई धार्मिक आन्दोलन करके, कोई धार्मिक सम्मेलन करके, कोई राष्ट्रीकरण करके उपकार क्षेत्रमे उतरे है। यह सब सुनते हैं और कुछ देखते है। हे निज प्रभो ! बता, तू भी कुछ करना चाहता है कि नही ? प्रभो क्या बताऊ, कदाचित् कभी सामाजिक काम करता हूँ तो स्वयकी करुणा आजानेके कारण सामाजिक काम से विश्राम लेनेकी बात सूझ बैठती है। अत यह बात समझमे आई कि ज्ञानार्जनका यत्न रखते हुए अन्तर्दृष्टिशोध करते हुए अपनी खबरमे रहनेका काम कर तथा कमजोर मनोवृत्तिको खुराक देनेके लिये सूर्योदयके १॥ घण्टे पश्चात्से १। घण्टा तथा ३। बजेसे ४। बजे तक दुपहर बाद १ घण्टा समाजहित मे प्रवचन, चर्चा वार्तालाप कर ले। । सभावित आहारके बाद १० मिनट तक उसी श्रावकके घर पर बोलना तथा इसके बाद स्थानपर आकर १५ मिनट विश्रामके बाद अधिकसे अधिक ३५ मिनट तक नगरस्थ मुमुक्ष पुरुषो या जिनको बोलनेके लिये समय दिया गया है उनको बोलना। इसके अतिरिक्त अन्य समयमे न बोलना। सिर्फ भाद्रपदके दशलक्षमपर्वमे प्रात समयमे बादमे आधा घन्टा और बढा सकता व दुपहर बादके समयमे २॥ से ३। तक का आधा घण्टा और बढा सकता। दिवाली तक इस प्रोग्रामको रखना, बादमे फिर क्रमका विचार करना, किसी भी नगरमे प्रस्थान पहुँचके समय १५ मिनट बोल सकना।

१२ फरवरी १९६०

कभी भी अचानक मौत हो जावेगी, आगे क्या होगा ? यह सब तुम्हारे वर्त रहे परिणामोके अनुसार बात है। अत हे आत्मन् ! धर्ममे प्रमाद मत कर। धर्मपालनके लिये ये दो काम करना है (१) निजमे वर्त रहे इन विभावोको

अध्रुव, अहित व औपाधिक जानकर इनसे विरक्त रहना, (२) स्वत सिद्ध, सहज, त्रैकालिक निज चैतन्य स्वभावकी प्रतीति व रुचि करना।

आज रात्रिको बुखार आगया, खामीका प्रकोप रहा, रात्रि २ घटे निद्रा आई। अपथ्य भोजनकर लेनेका यही परिणाम होता है, जैसेकि अपथ्य विभाव अपना लेने परिणाम आकुलताओका अनुभव होना है।

१३ फरवरी १९६०

वस्तुस्वरूपको, स्वतःसिद्ध त्रिकालतन्मय जैसा है तैसा जानकर स्वत सिद्ध त्रिकालतन्मय निज चैतन्यकी प्रतीति करके उस ओर ही रीझ बनाये रहना, इससे बढकर और कोई पुरुषार्थ नही है।

आज दुपहर १२ बजे बाद शिखरजीसे ईसरी पैदल आये, बुखार १०० डिग्रीसे ऊपर था परन्तु महाराजजी व अन्य त्यागियोके साथ था इस लिये चल ही आये। यह रास्ता १० मीलसे कम नही मालूम होता। १२ बजेके चले ५ बजे आ सके। आजकी रात १०३ डिगरी बुखार होगया। बुखार तेज था और भयकर था परन्तु पता हो रहा था कि यह इतना तेज बुखार है, आया है और ३ दिनमे मिट भी जावेगा।

१४ फरवरी १९६०

आज बुखार कुछ कम रहा। किसी भी द्रव्यके बारेमे ऐसा हो, वैसा हो इत्यादि कुछ भी सोचना क्या सर्वज्ञदेवकी अभक्ति नही है। जो होगा जिस प्रकार होगा वह होगा ही। वह सब सर्वज्ञदेव द्वारा ज्ञात है। अब किसी पदार्थ के बारेमे चिन्ता करना, कल्पना करना कि ऐसा हो जाय, कही ऐसा न हो जाय, यह सब क्या इस बातका द्योतक नही कि लो तुम्हे सर्वज्ञदेवके ज्ञान पर भी विश्वास नही है।

अरे प्रिय आत्मदेव! तेरी ही तो शक्ति यह है जिसका विकास सर्वज्ञत्व है। सर्वज्ञत्वमे अविश्वासका मतलब अपने स्वरूपका अविश्वास है। जब अपने को ही खो दिया तो भरते फिरो ससारचक्रमे, उस पर कोई क्या करे?

देखो प्यारे! किसी भी द्रव्यके परिणमनका भार जुम्मा, विकल्प तुम

अपने ऊपर मत लो, सब कुछ सर्वज्ञ प्रभुके ज्ञानको समर्पित कर दो। इस सब ज्ञेयमे तेरा अधिकार नही है। यह सब ज्ञेय उपवन परमात्माके ज्ञानके अन्दर की बात है। इसमे हाथ न लगा अर्थात् इसके परिणमनके बारेमे कल्पना न कर, अनधिकार चेष्टा मत कर। सर्वज्ञ परमात्माकी खूब भक्ति कर।

१५ फरवरी १९६०

आज भी बुखार कम रहा। पूज्य महाराज श्री को बुखार आया।

हे निज नाथ! प्रियतम! जो कर्तव्य हो सो दिखा। भैया करनेको तो एक ही काम है, वह क्या— सहज परमात्मातत्त्वकी उपासना अर्थात् आत्म-स्वभावकी दृष्टि बनाये रहना। अच्छा, यदि इसमे न रह सके तो क्या करें? दूसरा भी काम बताओ। लो, दूसरा काम यह है कि अपने विभाव भावोको गाली देते रहना। इसका मतलब क्या? इसका मतलब यह है कि मैं तो निरापदस्वरूप हूँ, सहज परमात्मतत्त्व हूँ, सहज परम-आनन्दमय हू, इस पर तो आपत्ति विभाव भावकी लद गई है, ये राग, ये कल्पनाये महती विपदाये हैं, ये अध्रुव है, मायारूप हैं, पराश्रित हैं, दुःखरूप है, अहित है। अय विभावो! हटो तुम दुष्ट हो, पर-भाव हो, इत्यादि रूपसे इनका तिरस्कार करना, यह दूसरा काम है। लो, अब तो तुम्हारे लिये दो काम हो गये।

१६ फरवरी १९६०

महाराज श्री का बुखार आज कम है।

किसी पदार्थकी चिन्ता रखना मनोबलको हीन करनेका उद्योग है। अधिक बाते करना वचनबलको हीन करनेका उद्योग है। कर्मविकार या काम-चेष्टा करना कायबलको हीन करनेका उद्योग है।

जीवन जिसका ऐसा बने कि जिसमे किसी पदार्थकी चिन्ता न हो, अधिक बात बोल-चाल न हो और जब बोल-चाल हो तो हित-मित-प्रियवचन रूप हो, कामविकार व कामचेष्टा लेश भी न हो; किन्तु हो आत्म स्वभावस्मरण, आत्महितकर चर्चा, निष्काम निर्विकार, परमात्मदेवकी पूजा— वह जीवन सफल जीवन है।

१७ फरवरी १६६०

महाराज श्री का बुखार आज शान्त है। स्वास्थ्य लाभके लिये स्थानान्तर जाना आवश्यक समझा है इस लिये आज जा रहा हूँ।

सब जीव सुखी हो। जो जीव निज सार तत्त्वको जान कर उसने उपयुक्त हो रहे हैं वे सत्य आनन्द पावेगे ही, आनन्द पावो, सुखी होओ। जो जीव बाह्य आरभ परिग्रह त्याग कर पूजा, तप, सयम आदि शुभ क्रियामे लग रहे है, वे अपने सतोषस सुखी हो रहे हैं, सुखी होओ और उस सुखसे भी उत्कृष्ट अनुपम निर्विकल्प समाधि सजात स्वसवेदनका आनन्द है उसको ज्ञान समाधि-बलसे पा कर सुखी होओ, आनन्दमग्न होओ। जो जीव गुण ग्रहण कर ज्ञान चक्षुका उपयोग कर सुखी हो रहे है, सुखी होओ और पूज्य बनकर परम-निर्विकल्प आनन्दमे प्रगति करो, सुखी होओ।-जो जीव मेरे दोष ग्रहण कर सुखी हो रहे हैं वे मेरे उपकारी तथा मेरा कुछ भी खर्च न करा कर सुखी होने वाले जीव सुखी होओ, खूब सुखी होओ, इतने सुखी होओ कि उससे ऊब कर आत्म प्रकाश पाकर परम आनन्दमे विहार कर आनन्द मग्न हो जाओ, सुखी होओ। जो जीव असज्ञी है वे भी येन केन प्रकारेण सुखी होओ और इस प्रकारसे सुखी होओ कि अनायास योग्य विशुद्धि पाकर उत्तम (मनुष्य) आयुका बन्धकर मनुष्य बनकर रत्नत्रयकी आराधनासे सत्य सुखी हो जावो। सब जीव सुखी हो।

१८ फरवरी १६६०

किसीके सुखी होनेमे अपने सुखमे कमी नही आती। जो लोग दूसरे को सुखी देखकर ईर्ष्या करते हैं वे मूढ प्राणी है। सर्व आत्माओमे ज्ञान व आनन्द गुण है। कोई अन्य किसीका ज्ञान या आनन्द ले ही नही सकते। फिर अन्यके सुखी होनेसे किसीका बिगडता क्या है ? प्रत्युत ज्ञानीको देखकर ज्ञानका समर्थन होनेसे समथकके ज्ञानकी वृद्धि होती है और आनन्दयुक्तको देखकर आनन्दका समर्थन होनेसे समर्थकके आनन्दकी वृद्धि होती है।

सब जीव सुखी हो, सब जीव सुखी हो, जितना बने ऐसा उद्योग करो कि

उस निमित्तको पाकर अन्य जीव सुखी हो, ऐसी भावना करो कि सब जीव सुखी हों।

अहो ! आनन्दका परम निधान यह आत्मा स्वय ही है, इसके विकासमे बाधक बाह्य पदार्थकी प्रीति है। अहो सहजानन्दमय, ज्ञानस्वरूप निज आत्म-तत्त्व ! तुम सतत् दृष्टिमे बने रहो।

१९ फरवरी १९६०

आत्माका जो सत्य स्वरूप है उसे सोचकर प्रसन्नता बढाना। जीवका असली साथी उसी जीवका शुद्ध स्वरूप है जीव तो अकेला है किन्तु जिस जीव ने अपना शुद्ध स्वरूप जाना है उसके पास तो सब कुछ है। जीवकी ही सत्ता क्या सभी द्रव्योकी सत्ता अप्रतीघात है। उसका कोई बिगाड कर सकने वाला नही है। परिणामोकी निर्मलता बनना ही सर्वोपरि व्यवसाय है, सर्वोपरि पुरुषार्थ है।

२० फरवरी १९६०

परपदार्थोका समागम आकुलताका ही कारण होता है। नरभव बडा दुर्लभ जीवन है, इस भवमे यदि आत्म साधनाका साधन न कर सके तो फिर क्या पता व क्या ठिकाना। असज्ञी भव मिला तब पुरुषार्थकी सुयोग्यतासे भी गये।

प्रत्येक पदार्थ अपना-अपना अस्तित्व वाला है। अत. कोई द्रव्य किसी अन्य द्रव्यका स्वामी, कर्ता या अधिकारी हो सके यह त्रिकाल असभव है। पुण्योदयका निमित्त पाकर कुछ इष्ट समागम होता है, उस समागमका कर्ता या स्वामी आत्मा नही। यह निमित्त नैमित्तक भावका सहज मेल है। वह जैसे जड-जड-द्रव्योमे होता है वैसे जड चेतन द्रव्योमे हो गया। किसी भी पर-वस्तुके प्रति अहकार ममकार करना मूडता है। तत्त्वकी बात मूडतामे कैसे मिल सकती है ?

रहा सहा जीवन सम्यक्त्व, ज्ञानाभ्यास व यथाशक्ति (शक्ति न छुपाकर) सयममे यदि लग गया तो कुशलता है अन्यथा नरकावास जैसा सत्य ही हाथ है।

किसी भी समय किसीको दुख पहुचानेका भाव न हो, किसीके प्रति कटु, अहित वचन बोलनेका भाव न हो, किसीकी अधिकृत चीजको सकेत करके भी लेनेका भाव न हो और भोजनादिक का अन्तरूप छुपानेका भाव न हो, नर-नारी देहकी मलीनता, असारता स्पष्ट अवगत रहे, किसी भी परपदार्थके सग्रह का भाव उत्पन्न न हो।

२१ फरवरी १९६०

आज बुखार शान्त हो गया। श्री महावीरप्रसाद जी बैंकर्सके द्वारा की जाने वाली परिचर्या धर्मस्नेहसे ओत-प्रोत रहती है। इनके द्वारा हुई परिचर्याके फलस्वरूप स्वास्थ्यमे शीघ्र सुपरिवर्तन हुआ।

लोकमे प्रत्येक द्रव्य स्वतन्त्र हैं, किसीकी सत्ता किसी अन्यके आधीन नही है। फिर हे आत्मन्! किसी परवस्तु की चाह ही क्यो की जावे, उस परवस्तु से तेरा न कुछ परिणमन होना है और न कोई समृद्धि होना है। उल्टा ही, सक्लेश हस्तगत है परवस्तुकी चाहमे।

पाँच इन्द्रिय व एक मन इस प्रकार इन ६ कारणोके विषय इस जीवको परेशान किये हुए है। क्या गजब है? मनके विषयके पीछे जानेसे आत्माको क्या लाभ है? मनने चाहा मेरा नाम खुद जावे, प्रकट हो जावे, सो अव्वल बात तो यह है कि नाम रहित आत्मा है उसका नाम ही क्या खुदेगा? शकल का कल्पित नाम रख कर कुछ भी उडान करनेमे सिद्धि नही। नाम भी किस का क्या रहता? व्यर्थ ही इसकी धुनिमे जीव बेहोश रहता। श्रोत्रका विषय शब्द श्रवण, नेत्रका विषय रूपावलोकन, घ्राणका विषय गन्धगन्धन, रसनाका विषय रसास्वादन व स्पर्शनका विषय इष्टस्पर्श स्पर्शन है। वाह क्या विचित्रता है मोहकी? क्या मिल जाता है इन विषयोमे? केवल काल्पनिक मौज है। इन छहो विषय सेवने का फल क्लेश ही क्लेश है। ॐ शुद्ध चिदस्मि। शुद्ध चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम्।

२२ फरवरी १९६०

एक अणुमात्र भी विश्वास्य नही है इस जीवके हितके सम्बन्धमे। निज

आत्मा ही निज आत्माको विश्वास्य है। किसी भी परजीवकी प्रतिकूल परिणति देखकर विषाद क्यो होता यह अज्ञानाशका प्रताप है। हे आत्मन् ! तुझे अपना कल्याण करना है तो देखे जावो यथार्थस्वरूपको। प्यारे ! कर तो ऐसा साहस कि कोई कुछ भी न पूछे अथवा प्रतिकूल बोले तो भी इन हेतुवो पर दृष्टि न देकर अपनेको प्रसन्न ही बनाये रहो। स्वय स्वयके हितके प्रतिकूल कुछ मत करो और अन्यके प्रतिकूल होनेपर मनमे हसो, विषाद न करो यह तपस्या है। इस तपस्याको उत्साहपूर्वक करो। तेरा कहूँ कछु नही। तुझे जानता मानता कौन ? जिस तुझको ये लोक जानते उस तुझमे तू आपा कर रहा है। अरे पहिले अज्ञान तो मेट फिर अपना गौरव बगराना।

२३ फरवरी १६६०

दिखता है, बहुत कुछ दिखता है, उसमे तेरा क्या दिखता है जो तेरा है वह दिखता नही, जो दिखता है वह तेरा नही। भो आत्मन् ! तुझे शान्ति चाहिये या अशान्ति। शान्ति चाहिये तो शान्त स्वभावकी उपासना कर। अशान्ति चाहिये हो तो अशान्त भावकी प्रीति कर। तुझे छुट्टी है जो चाहे सो कर। अरे ! पावन प्रभु, कहा तो तेरा परमात्मस्वरूप और कहाँ आज यह दशा? अब भी कुछ नही बिगडा, ज्ञानबल सभाल, सब विघ्न शीघ्र नष्ट हो जावेगे।

२४ फरवरी १६६०

बाह्य पदार्थके लक्ष्यमे होने वाले परिणामको सुख मानकर सतुष्ट रहना महती मूढता है। अरे जितने भी विभाव है वे सब आत्म के लिये विपदायें है। उन्हे विपदा समझे और स्वभावमे ही समृद्धि समझे तो कल्याण हो सकता है।

शुद्धात्मा व सिद्धात्मा दोनोका स्वरूप समान है। शुद्धात्मा तो आत्मस्वभाव है और सिद्धात्मा निर्मल पर्याय है। यदि शुद्धात्मत्व अमल नही है तो सिद्धात्मत्व हो ही नही सकता। जैसे स्वभावजल व निर्मलजलका स्वरूप समान है वैसे ही आत्मस्वभाव व सिद्धपर्यायका स्वरूप समान है। हे आत्मन् ! देख तू प्रभु है, अकलङ्क है, समन्तभद्र है, विद्यानन्द है, सदाशिव है, सहजानन्द है, सनातन

है, त्रिकाल रक्षित है। तेरे स्वरूपमे ही ज्ञान व आनन्द है, अब तो समझ लिया, ज्ञानी हुए, अब रच भी बाह्य अर्थकी ओर आकृष्ट न हो।

२५ फरवरी १६६०

वीरता तो इसमे है कि किसी भी परपदार्थके प्रति रच भी लगाव न रखे। अनेको विचार, अनेको व्यवस्थाये, अनेको विकल्प, अनेको लोकाधिकार ये सब कायरताये हैं। आत्मसयमका जीवन ही पुरुपार्थभरा जीवन है। जीवका सहयोगी मित्र हितकारी शुद्धज्ञानोपयोग है। लोकमे तो ऐसा जचता कि यह पुरुप बडा परिश्रमी है। बडा कर्मठ है, बडा चतुर है, परन्तु सोचो तो सही कि आत्मस्वभाव ज्ञानानन्दमय निर्विकल्प पावन है, इस रूप तो रहा नही जा सकता और इसके विरुद्ध अनेको विकल्प आमान लगते हो तो तुम्ही बताओ कि वीरता किसमे है व कायरता किसमे है ?

२६ फरवरी १६६०

नयके प्रयोजनपोपक प्रकार ३ हैं (१) शुद्धनय, (२) शुद्धादेश, (३) अशुद्ध नय। (१) निरपेक्ष, स्वत सिद्ध सहज, ध्रुव, अचल, अनुपम, परमपारिणामिक निजस्वभावको अवगत करा देनेवाले नयको शुद्धनय कहते हैं। (२) इस नयके विषयको समझानेवाले व्यवहारको शुद्धादेश कहते हैं। (३) इसके अतिरिक्त जो जो भी आशय अथवा वचन है वे सब अशुद्धनय कहलाते हैं। चाहे गुणभेददृष्टि हो, चाहे पर्याय दृष्टि हो, चाहे शुद्ध पर्यायदृष्टि हो, चाहे अशुद्धपर्यायदृष्टि हो, कुछ भी हो ये सब दृष्टिया व इनके कथन सब अशुद्धनय है।

२७ फरवरी १६६०

हे आत्मन् ! तू तू ही है, तेरा कुछ भी बाहर किसीमे नही है। किसी भी बाह्य पदार्थका तेरेमे कुछ नही है। तू अपनी ही परिणतियोकी सृष्टि करता है, अन्य पदार्थ अपनी-अपनी परिणतियोकी सृष्टि करते हैं। तू किसी अन्य पदार्थका कुछ भी नही करता। फिर भी जब तक बाह्य पदार्थके करनेके भावमे बने रहोगे, तब तक गहन ससार जालमे क्लेश भोगते रहोगे। हे आत्मन् ! कोई भी बाह्य पदार्थ (चाहे सचेतन हो चाहे अचेतन हो) तेरा कुछ नही करता, फिर भी जब

तक वाह्य पदार्थोंसे मेरा वडप्पन है, मेरा सुख है, मेरा नाम है व कल्पित प्रतिकूल पदार्थोंसे मेरा अपमान है, मेरा क्लेश है, मेरी बदनामी है इत्यादि भावमे वने रहोगे तव तक गहन ससारजालमे क्लेश भोगते रहोगे।

प्रिय आत्मन् ! सचाई तो देख, वास्तविकता तो देख, प्रत्येक पदार्थ अपने अपने ही स्वत सिद्ध अस्तित्वके विलेमे सुरक्षित है। सब है और मात्र अपना अपना परिणमन करते चले जा रहे है। जैसे-जैसे ही सव अवस्थित है तैसे तैसे ही सवको देख। ससारसे मुक्त होनेका कितना सरल व शुद्ध उपाय है। जिस तरहके जो है उन्हे वैसा देखते रहो। कठिनाई कुछ है नही। कठिनाई तो वहाँ है जहाँ वस्तुस्वरूपसे उल्टा माननेको मचला जावे।

अहो ! शिवस्वरूप ! तुम कितने सरल व सुगम हो। अहो शिवमार्ग ! तुम कितने सरल व सुगम हो। जो तेरी शरणमे आते है वे समस्त दु खोसे मुक्त हो जाते हैं।

२८ फरवरी १९६०

क्षुधा एक दोष है। इस दोषको सभालते रहनेमे सतुष्ट रहना क्या मूढता नही है। आत्मन् ! तुझे क्षुधारहित होकर अनन्तकाल तक आत्मीय आनन्दमे आनन्दित रहना है। अत तू क्षुधाको वाधा समझ और क्षुधाकी पूर्तिके श्रमको भी वाधा समझ।

हाय ! अविवेकताओसे कैसा निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध पुष्ट किया कि आज भी यह आत्मा शरीरके साथ ऐसा लगा है कि शरीरके अस्वस्थ होने पर इसे चैन नही पडता, धैर्य धारण नही किया जा सकता। अहो देव। तू शरीरसे अत्यन्त भिन्न स्वरूप है, फिर यह क्या दशा हो रही है ? हे नाथ ! तू अपना सर्वस्व नाथ है, तू हे और परिणम रहा, अव कमी ही क्या है ? तू स्वय मे परिपूर्ण है, फिर भी अपना स्वरूप न जान कर वाह्य पदार्थसे भलाईकी कल्पना करके अनाथ वन रहा है। हे शरण ! तू पूर्ण शरण है, सुरक्षित है, अपना मर्म भूलकर अशरण मत वन।

तू एक द्रव्य है, अपनी शक्तियोमे तन्मय है, प्रतिक्षण अनन्तो शक्तियोके

परिणमनोको करता हुआ तू सदाके लिये अपनेमे बर्त रहा है। बता क्या तो तेरे साथ गरीबी लग रही है और क्या बाहिरी चीज तेरे साथ चिपकी हुई है ? अरे जिस समय जो तेरा परिणमन है वह उस ही समय रह पाता है, वह आगे एक क्षणको भी नही रह सकता। फिर अन्य पदार्थों की इसमे चर्चा ही क्या हो सकती है। तू अपनेको परिपूर्ण देख, अकेला देख, अबाधित देख। जैसे अचेतन पदार्थ, है और परिणाम रहा, वैसे ही तू चेतन पदार्थ भी, है और परिणाम रहा है। दृष्टिमे आजादी का सदुपयोग कर।

२६ फरवरी १६६०

जितने क्षण "मैं शुद्ध चैतन्यमात्र हूँ" यह उपयोग है, उतने क्षण तो सफल हैं बाकी क्षण तो लोकयात्रा है। अहो ! दुर्लभ नर जन्मका समय व्यर्थ न जाय ऐसी सावधानी कर लो। सच्ची सावधानी तो लक्ष्यकी है। हे आत्मन् ! बता तेरा क्या लक्ष्य है ? तुझे क्या करना है ? तेरा हित किस अवस्थामे है ? कुछ निर्णय है या नही ? अन्तरकी आवाजसे बोल। तू क्या कर पाता है, क्या नही कर पाता है, यह नही पूछा जा रहा है। पूछा यह जा रहा है तेरे भीतर श्रद्धा क्या है ? यदि परपदार्थसे हित व सुख है ऐसी श्रद्धा है तब तो आकुलतासे पिण्ड छूटना कठिन है। यदि यह दृढ प्रतीति हो कि "मैं स्वतन्त्र सत्तावान् चेतन हूँ इस मुझ का हित व सुख मुझसे ही है, यह मैं स्वय ज्ञान व आनन्दका पुञ्ज हू।" तब तो तू अभीसे कृतार्थ हो गया। सत्य श्रद्धाके अनुकूल अपना उपयोग बनाये रह। यही धर्म पालन है। सुख, हित, शान्ति धर्मसे ही होना है।

१ मार्च १६६०

"मैं शुद्ध चैतन्यमात्र हूँ" मैं समस्त परचेतनोसे समस्त अचेतनोसे अत्यन्त विभक्त हूँ, मैं ध्रुव हूँ अत पर्यायोसे परे हूँ, मैं अखण्ड हूँ अत गुण भेदकी वार्ता से परे हू। मेरा सब कुछ मुझमे ही है, बाहरसे मुझमे कुछ नही होता। मुझमे किसी भी अन्य वस्तुका दखल नही है। मैं स्वत सिद्ध हूँ अत पूर्ण सुरक्षित हूँ। मुझमे चैतन्यका ही प्रवेश है, शारीरिक व्याधिका मुझमे प्रवेश नही। मैं

अनाद्यनन्त सनातन हू, मेरा जन्म-मरण नही। किसी अन्यसे मुझमे कोई विपत्ति नही आती, जो मुझमे है वह मुझसे होता रहता है। मैं समस्त पर-पदार्थोंसे अत्यन्त विभक्त हू। मैं अपने आपके एकत्वमे तन्मय हूँ। ॐ ॐ ॐ। ॐ शुद्ध चिदस्मि। शुद्ध चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम्।

२ मार्च १९६०

ससारमे सुख जरा भी नही है, फिर भी ससारके सुखसे उपेक्षा नही की जाती। इससे मालूम होता है कि जीवके साथ मलीनता बहुत लगी है। इसको दूर करनेके लिये भेद-विज्ञान व स्वरूपभावनाका बडा पुरुषार्थ करना है। पुरुषार्थ तो सुगम हे, करनेका प्रमाद है। प्रमाद क्यो होता है? इसका कारण चला आया हुआ विषय-सस्कार है। विवशता तो है ससारकी, परन्तु सस्कार को तोडनेका यत्न तो खुदही करना पड़ेगा। उस सस्कारके विनाशका उपाय तो भेद-विज्ञान व स्वरूपभावना है।

३ मार्च १९६०

जब योग्यता आकुलताकी है तो कही जावो, कही रहो, किसीका समागम रखो, आकुलताके योग्य कल्पनामे करके आकुलित होवेगे ही और बार-बार नई समस्याये पाते रहोगे ही। यदि आकुलतासे बचना है तो भेदविज्ञान व स्वरूपो-पासनाका बल बढाकर समाधिभावके उपासक बनो।

४ मार्च १९६०

वर्तमान पर्यायमे ही सतुष्ट रहना तो उन्नतिकी निशानी तो नही है। लोग तुम्हे देखते नही, जानते नही, मानते नही फिर भी उनको नजर रखकर विकल्प बनाये जा रहा है। क्यो न बनाये, अनादिसे सस्कार यह पडा और बात सुनने समझाने वाले भी ऐसे ही मिले। इन सबसे पार होकर अपने प्रभु की प्रभुतासे भेट करना बडा ऊचा काम है।

५ मार्च १९६०

जो वर्तमान स्थिति है उसमे ही धर्म व्यवस्था बनाओ। ऐसा न सोचो कि

अमुक प्रकारकी स्थिति होने पर धर्म-कार्यक्रम बनाऊगा, जिसे अभी धर्म मार्ग पर चलनेकी रुचि नही उमसे बातके आधार पर यह आशा करना कि आगे धर्म प्रोग्राम निभाया जायगा, व्यर्थ है।

६ मार्च १९६०

ससारभाव ही दु.खस्वरूप है, फिर उसमे सुख दु खका विनिर्णय क्या हो? श्रद्धान दृढ हो, आचरण उत्तम हो, फिर लौकिक दशा खोटी भी हो तो आनन्द रहेगा। श्रद्धान निज स्वरूपका न हो, दुराचारका वास हो तो लोकदृष्टिमे ऊचा भी गिना जाय तो भी खुदके लिये खोखला है। इसमे शान्ति न मिलेगी।

हे आत्मन्! तेरा कल्याण तो रत्नत्रयके सेवनमे है। बाह्य उपाधिया तेरा कल्याण नही कर सकेगी। उनकी उपेक्षा कर, आत्मस्वभावकी उपासना कर।

हे आत्मदेव! तुझ पर मैंने बडा अन्याय किया। तेरा स्वभाव निर्विकार स्वच्छ ज्ञायक भावमात्र है सो विकार विषका पान करा करा कर मूर्च्छित रखा, भव भव मरण कराया, प्रतिक्षण मरण कराया, आकुलता व क्लेशोकी तो गणना ही क्या हो? हे आत्मदेव! अब तेरी महिमाका पता हुआ, प्रत्येक पदार्थोंकी स्वरूप महिमाका मर्म समझा। अब मैं तेरी रक्षा ही करूगा, विषय कषायके भावका प्रवेश भी न होने दूगा, ऐसा सकल्प बाध कर मैं बैठा हूँ। अहो भगवत्स्वरूप! तुम जयवत होओ।

७ मार्च १९६०

आनन्दस्वरूप तो आत्मा स्वय है, स्वत है, अत आनन्दकी प्राप्तिके लिये कुछ परिश्रम ही नही करना है। आनन्द स्वभावके प्रतिकुल जो सुख और दु ख है उनकी प्राप्तिके लिये परिश्रम करना पडता है। सो जो परिश्रम कर रहे हो उसको छोड दो, इतना विश्राम ही तो चाहिये है, लो, फिर आनन्द ही आनन्द है।

यह विश्राम मिलता है तत्त्वज्ञानसे। भ्रममे जो परिश्रम, भय, शङ्का, सक्लेश आदि विपदायें हो जाती हैं वे भ्रमके समाप्त होने पर मिट जाती हैं।

जीवने दु ख भी तो भ्रमसे लगा रखा हे। बताओ क्या दु.ख है यदि भ्रम न करो तो। धन घट गया इसका दु.ख तो इसीसे हे ना कि धनसे स्वहित माना है यह भ्रम किया। इज्जत नही बढ रही इसका दु.ख तो इसीसे है ना कि इस असार असमानजातीय पर्यायमे स्वात्म बुद्धिकी और इसकी इज्जतसे स्वहित माना, यह भ्रम किया। मतलब एक ही बात क्या, जितने बातें दुःखकी समझी जाती हैं उनमे एक विभ्रम ही कारण है। उस महारोगके मूलत मिटनेका उपाय स्वविश्राम है।

८ मार्च १९६०

स्वरविज्ञान अदृष्टका सूचक निमित्त है, कर्ता नही। स्वरविज्ञानसे सम्बन्धित कुछ सकेत ज्ञातव्य हैं—

चन्द्रस्वर	सूर्यस्वर	उभय
१—इंगिला	पिङ्गला	सुखमना
२—वामस्वर	दक्षिणस्वर	उभयस्वर
३—सौम्यकाज पोषक	क्रूरकाज पोषक	लौकिकहानि सूचक
४—स्थिरकार्य अनुग्राहक	चरकार्य अनुग्राहक	
५—शुक्लपक्ष स्वामी	कृष्णपक्ष स्वामी	यदि प्रियकता लाभ हानि सामान्य
६—शुक्लपक्षकी प्रथम तीन तिथि व ७, ८, ९, १३, १४, १५	कृष्णपक्षकी प्रथम तीन तिथि व ७, ८, ९, १३, १४, १५	
७—कृष्णपक्षकी ४, ५, ६, १०, ११, १२	शुक्लपक्षकी ४, ५, ६, १०, ११, १२	
८—रविवार, मगलवार, शनिवार	सोम, गुरु, बुध, शुक्रवार	मिथुन, धन
९—वृष, सिंह, वृश्चिक, कुम्भ राशि	मेष, कर्क, तुला, मकर राशि	कन्या, मीन
१०—सन्मुख, बायें, ऊपर दिशा	पीछे, दाहिते, नीचे दिशा	

११–पृथ्वी, जल, मिश्र	अग्नि, वायु, आकाश, मिश्र	
१२–१ घण्टे तक	एक घण्टे तक	१३ श्वास प्रमाण
१३–कार्य या प्रश्नके सम अक्षर	कार्य या प्रश्नके विषय अक्षर	

९ मार्च १९६०

स्वरविज्ञानसे सम्बन्धित पञ्च तत्वोका ज्ञातव्य विषय—

पृथ्वी	जल	अग्नि	वायु	आकाश
१–मिश्र चद्रस्वर	मिश्र चन्द्रस्वर	मिश्र सूर्यस्वर	मिश्र सूर्य	मित्र सूर्य
२–पीतवर्ण (भृकुटीमे)	श्वेत वर्ण	लाल वर्ण	हरित वर्ण	श्याम वर्ण
३–सन्मुख, १२ अगुल पर	नीचे, १६ अगुल पर	ऊपर, चार अगुल पर	तिरछा ८ ऊ०	वाहर नही
४–चौकोर आकार	गोल आकार	तिकोना	ध्वजाकार	शून्या
५–२० मिनट तक	१६ मिनट तक	१२ मिनट तक	८ मिनट तक	४ मिनट
६–शुभ	शुभ	मध्यम	अशुभ	अशुभ
७–जघा स्थान	पाद स्थान	स्कध स्थान	नाभि स्थान	मस्तक
८–दक्षिण	पश्चिम	उत्तर	पूर्व	स्थिर
९–बुध स्वामी	शशि स्वामी	शुक्र स्वामी	गुरु स्वामी	
१०–जय, तुष्टि, पुष्टि, रति, क्रीडा, हास्य, अवस्था	जय, तुष्टी, पुष्टि, रति, क्रीडा, हास्य, अव०	ज्वर, निद्रा, प्रयास कप अवस्था	ज्वर, नि० प्र० क०	गतायु मृत्यु
११–मधुर रस	कषायला रस	तिक्त रस	क्षार	अव्यक्त
१२–रोहिणी, अनुराधा, ज्येष्ठा उत्तरापाठ,	आर्द्रा मूल, पूर्वाषाढ, उत्तराभाद्रपद, शतभिषा रेवती,	भरणी, कृतिका, पुष्य, पूर्वभाद्रपद,	अश्विनी मृग० पुन० उत्तराफा०	

	अभीच, श्रवण धनिष्ठा	अश्लेषा	मघा, पूर्वा, फागुनी,स्वाती	चि०ह०वि०
१३–क्षमा शान्ति आदि	शान्ति	क्षमा आदि	क्रोधादि	
१४–आधार गुहा	लिङ्ग	चक्षु	घ्राण	श्रोत्र

१० मार्च १९६०

ध्यान करनेके लिये क्रमवार कार्य—

जिसे उत्तम ध्यान करना है उसे यथार्थ वस्तुस्वरूपका ज्ञान तो यथार्थ चाहिये ही है। उसकी अपेक्षा सर्वत्र है, किन्तु कुछ बाह्य साधनोका जिकर करते हुए उपाय दिखानेका अभी प्रयोजन है—

पहिले पद्मासन (जैसी कि जिन प्रतिमाकी आसन होती हैं) या मूलासन (बायां पैरकी ऐडी गुदा व अण्डकोषके बीचमे लगाकर व दाया पैरकी लिङ्गमूल व नाभिके बीचमे लगाकर बैठना) स्थिर करे व मेरुदण्ड सीधा रखे, पश्चात् शीत ऋतुमे नाकके दाहिने छिद्रसे श्वास छोडे, फिर इसीसे ले, फिर बाये स्वरसे छोडे, इसीसे ले, फिर दाये स्वरसे छोडे इसीसे ले। ऐसे परिवर्तनसे १५-२० बार करे, फिर दोनो स्वरोसे सब स्वास छोड कर कुछ देर श्वास न ले और पेटको सकुडा कर पीठकी ओर ले जावे। इसे उड्डायन कहते हैं। फिर श्वास लेकर धीरे धीरे बाहर निकाले। ऐसा २-४ बार करे, इससे नाडी शुद्धि होती है। यदि नौली करनेका भी प्रयोग आजाय तो और अच्छा है। नौली करनेकी विधि यह है कि इसी आसनमे पूर्वकी भांति उड्डायन करते हुएमे पेटकी दोनो नालियां पेटमे ही घुमावे, फिर बंद करके शीघ्र श्वास लेकर धीरे धीरे बाहर निकाले। इससे नाडीकी और विशेष शुद्धि होती है।

सब शान्त होकर धीरे-धीरे श्वास ले और धीरे धीरे छोडे। इन श्वासोमे अपना मन मिलावे अर्थात् आती जाती सब क्रियाओवाली श्वासोको मनसे देखता रहे। इससे मन तो सब अन्य ओरोसे हटाकर एकमे स्थिरताका अभ्यास होता है। इसही बीच कभी श्वास पूरी छोडकर फिर श्वास नाभिमे भर कर कुछ ही देर

कुम्भक करनेके बाद भावनाबलसे नाभिसे पीठकी ओरसे जानेवाली बकनालीसे वायुको ऊपर लेजाकर भृकुटी के मध्यमे ले जाकर मस्तकके ठीक बीच सहस्रदल कमल कर्णिकामे छोड देवे। यह सब भावनात्मक पद्धति से होगा। पश्चात् पूर्णवत् श्वास निश्वास करे ॥

११ मार्च १६६०

त्राटक योगसे भी मनको स्थिर करना व मिलाना चाहिये। यदि प्रसग भगवद्‌बिम्ब समक्ष हो तो उसे जितना बन सके स्थिर दृष्टिसे देखता रहे। पश्चात् जब नेत्र थक जावे तब इस भावनाके साथ कि इस प्रभुबिम्बको नेत्रोने उठाया और पी लिया, नेत्रोको बन्द करके उस बिम्बको हृदयमे विराजमान करे और बडी रुचिके साथ उसे निरखे। साथ ही प्रभुवत् अपना स्वच्छ स्वरूप देखे, फिर उसी बिम्बको इस प्रकार देखे कि जिस ओर खुदका (साधकका) मुख है उसी ओर बिम्बका मुखादि हो गया। फिर आत्मस्वरूप देखे फिर बिम्बका खुदके शरीर प्रमाण एक क्षेत्रावगाहवत् निरखे, फिर आत्मस्वरूप निरखे। यदि समक्ष प्रभुबिम्ब न हो तो मनकी सहायतासे स्मरण द्वार से नेत्र द्वारा किसी भी अतिपरिचित मनोहारी प्रभुबिम्बको देखे फिर पूर्ववत् त्राटक योग करे।

कभी सामने ॐ लिखा हुआ हो तो उस पर भी स्थिर दृष्टि करके उस ॐ को भी नेत्रद्वारोसे पीकर सर्वाङ्ग ॐ ध्वनिमय व सर्वश्रुतवाच्य ज्ञानमय आपको निरखे।

१२ मार्च १६६०

इस मनकी साधना कर लेने पर या मध्य मध्य देहसे भिन्न ज्ञानानन्दरस निर्भर शुद्ध चेतनामात्र अपने आपका अनुभव करे। अपने आपकी बात अपने आप मे देखे। मैं हूँ और परिणाम रहा हूँ इतना ही तो यहा मर्म है। इसही का विस्तार है— मैं जानता हूँ, अपनेको जानता हूँ, अपने द्वारा जानता हूँ, अपने लिये जानता हू, अपनेसे जानता हूँ। अपनेमे जानता हूँ, इसी तरह छहो कारकरूपमे मैं देखता हू। इसी तरह छहो कारकके रूपमे मैं रमता हू। इसी

प्रकार श्रद्धा, शक्ति आदि जितने भी गुण हैं सभीकी अर्थक्रिया अभिन्न मुभरूप ही है । अहो मैं हूँ ! यह हूँ, इतना हूँ, यही हू, शरण स्वय हूँ, मेरा मैं हूँ, हूँ, हू, हूँ । इत्यादि निश्चयनयकी भावना करे और फिर अभेदरूप होकर मात्र अनुभवदशामे विकल्पातीत होकर रहे ।

अभेद निजध्यानसे जव हटे तव आत्मतत्त्वके तीन विकासोकी भक्ति करे । ये तीन विकास हैं— साधु सशरीर परमात्मा व अशरीर परमात्मा । साधुके तीन प्रकार हैं— आचार्य, उपाध्याय, साधु । इनके स्वरूपको जानकर उस उस आकार वातावरण क्षेत्र आदि सहित इन पच परमगुरुवोका स्मरण करे और भावना करे—ये पञ्च परम गुरु मेरे ही तो विकास है । जैसे वे चैतन्य है वैसा ही मैं चैतन्य हूँ । ध्रुव निज स्वभावके अवलम्बन के परिणामस्वरूप ये शुद्ध विकास होते है । जो साधना करे उसीके विकास है । ॐ शुद्ध चिदस्मि ।

इस प्रकार भेदोपासना, अभेदोपासना आदि पद्धतियोसे ध्यान करे । ध्यानकी साधना मे प्रथम योगसाधनाका अवलम्बन लेना लिखा है । वह अभ्यासी साधक के समक्ष शिक्षा लेकर करना चाहिये तव निर्विघ्न, निर्दोष साधना सुगम होती है । ॐ तत् सत् परमात्मने नम. ।

१३ मार्च १९६०

किसी भी परपदार्थकी दृष्टि रखते हुए न तो शान्ति पाई जा सकती है और न सही वुद्धि । ज्ञान और आनन्दका निकट सम्वन्ध है । ज्ञान बढता है तो आनन्द भी वढता है, ज्ञान घटता है तो आनन्द भी घटता है, आनन्द वढता है तो ज्ञान भी वढता है, आनन्द घटता है तो ज्ञान भी घटता है । यह आनन्द व ज्ञानका स्वरूप ही विलक्षण है जो कि विचक्षणोकी प्रतिभामे ही प्राप्त स्थान है ।

कभी ऐसा भी मालूम होता है कि दुनिया के विकल्पोको करके वढा हुआ ज्ञान जब घटता है तव आनन्द वढता है, किन्तु वहां पर भी वह ज्ञान वढा हुआ समझे । जो ज्ञान निज ज्ञान स्वभावका आलम्बन करले वह ज्ञान ही वृद्ध ज्ञान है । कभी ऐसा विदित होता है कि ज्ञान तो कई विषयोका वढ गया और आनन्दका वहाँ दर्शन नही होता, क्लेश व आकुलता ही नजर आती, किन्तु

वहा सम्यग्ज्ञान तो घट गया अथवा रहा नही, यह कहना चाहिये।

अथवा कैसा ही हो जहा ज्ञानयोग्यता बढी होती है वहा आनन्द योग्यता बढी होती है, जहा ज्ञानयोग्यता हीन होती है वहा आनन्दयोग्यता हीन होती है।

अथवा किसी भी प्रकारका बढा हुआ ज्ञान है वह ज्ञान विकास तो आनन्दका ही हेतु है, परन्तु यदि राग द्वेष मोहभाव हैं तो वह आनन्द का तिरस्कार करके क्लेशानुभवका उत्थापन कराते हैं। कुछ भी हो, जीवका कल्याण करा सकनेमे समर्थ एक ज्ञान ही हैं।

१४ मार्च १९६०

ससारके सभी ये पदार्थ मायास्वरूप है, क्योकि जिस आकारमे ये हैं ये आकार किसी एक चीजसे नही बना, क्योकि इनका तोड फोड होता रहता है, क्योकि इनकी जो शकल है उसका परिवर्तन होता रहता है।

मायामय पदार्थोंकी ओर झुकना क्लेश ही करता है, क्योकि जैसा हम चाहते वैसा उनका परिणमन हो यह निश्चित है ही नही, क्योकि ये जब पास हो तब पास हैं, नही पास हैं तो नही पास है। इनका वियोग निश्चित है, क्यो कि इन पदार्थोंमे तो आनन्द है ही नही, चेतनमे है सो वह उसीका है आनन्दता परपदार्थोसे आता ही नही और यह बहिरात्मा उनकी चाह करता है सो यह अनर्थक्रियाकारिता है।

भगवान आत्मा स्वय ज्ञान आनन्दका पुञ्ज है। यदि इस ओर ध्यान रहे तो आकुलताको अवसर नही, साथ ही आकुलताके निमित्तभूत कर्मोका भी क्षय हो जाय। खुदके लिये खुद ही शरण है यह बात ध्रुव सत्य है। परको शरण माननेकी बुद्धिमे वह आत्मा अशरण है। जो शरण नहीं हो सकता उसे शरण माना जाय इससे अधिक खतरा और क्या है ? यह खतरा भी इतना कटु खतरा है कि खतरा मालूम नही पडता और पूरा खतरा है।

ॐ तत् सत् परमात्मने नम, ॐ नम शिवाय; ॐ नम सिद्धाय, ॐ नम शुद्धाय, ॐ नम. सौम्याय, ॐ नम शक्ताय, ॐ नम सत्याय। ॐ। ॐ। ॐ।

१५ मार्च १६६०

ध्यानाभ्यास बढानेके लिये निम्नाकित चर्या आवश्यक है—

१—आहार अल्प लेना चाहिये जिससे किसी भी समय प्रमाद न आ सके। इसका पालन विवश हो हो जावे एतदर्थ इसही माहमे कुछ दिन बाद नमक व मीठाका जून तक त्याग व आगे भी यत्न।

२—समस्त परपदार्थ व लोकोसे मोह छोड देना चाहिये।

३—आशा करे तो एक युक्तिकी ही करे अथवा कुछ आशा न करे, वस्तु स्वरूपका ज्ञाता द्रष्टा रहे।

४—दूसरे जीवोकी निन्दा के वचन मुखसे कभी नही बोले व अपनेमे यह गुण है, यह किसी भी ढगमे मुखसे कभी न कहे।

५—जहाँ अपनी प्रशसाके बचन सुननेमे आवे वहाँसे उठकर जानेका स्थान दूसरा मिले तो उठ जावे, यदि गुणानुरागियोका आग्रह है तो वर्ष मे एक दिन इनके लिये नियत कर देवे।

६—आत्मा व तत्वकी कथा सिवाय अन्य कोई कथा (विकथा) नही करे।

७—जहा तक सुविधा हो एकान्त, कोलाहल—शून्य स्थानमे निवास किया जावे।

८—सामायिकमे आसन न बदले, यदि अशक्ति हो तो दूसरी बार तो बदले ही नही।

९—प्रत्येक सामायिकमे एक बार तो परउपयोग हटाकर आत्मभावना व आत्मविश्रामका उद्योग तो जरूर करना, चाहे सफलता हो या न हो।

१६ मार्च १६६०

गिरिडीह मे—

आज भाव हुआ कि ता० १०/७/६० के बाद यह नियम किया जावे—

आकाशविमान, डोली जासि व नावके अतिरिक्त सब यानका निम्नाकित बोलके अतिरिक्त त्याग रहे सो अवशिष्ट यानोमे से और यानोका तो त्याग था ही, सिर्फ रेलका उपयोग था, सो निम्नलिखित अवसरके सिवाय रेल का त्याग।

(१) निर्यापक गुरुके पास आना-जाना

(२) निर्यापक गुरुके निवासवाले प्रदेशमे आवश्यक समझने पर वर्षायोग करने जाना आना व निर्यापक गुरुके पास होते हुए भी जाना आना।

(३) प्रतिकूल समय या स्थानमे अकुशल होनेपर अनुकूल स्थानपर जाना।

(४) धर्मसाधनार्थ शान्त एकान्त तीर्थ, वनस्थली आदि स्थानोपर जाना आना व गुरु आज्ञासे अन्यत्र जाना आना।

(५) किसी विशिष्ट पुरुषके समाधिमरणके अवसरमे जाना आना।

१७ मार्च १९६०

अविवेक अनर्थका मूल है। अविवेकका कारण मोह है। जहा मोह है वहाँ अविवेक है। मोह मिटता है निर्मोह आत्मस्वरूपकी उपलब्धिसे। शुद्धात्मोपलब्धि होती है भेदविज्ञानसे। भेदविज्ञान होता है, वस्तुलक्षणपरिचयसे। वस्तुलक्षण परिचय होता है तद्विषयक विद्याभ्याससे। अत अनर्थ विपदासे छूटनेकी इच्छा करने वालोका विद्याभ्यासमे प्रयत्नशील होना चाहिये।

१८ मार्च १९६०

प्रतिकूल मार्गसे चलनेपर प्रतिकूलसे भेंट होगी, अनुकूलमार्गसे चलनेपर अनुकूलसे भेंट होगी।

आत्मा तो स्वय उद्धारक है, उद्धारकी प्रार्थना क्योकी जा रही है? अरे जब डाक्टर बीमार होता है तो दूसरे डाक्टरसे उपचार करानेकी सूझ दी हो जाती है। अरे बीमार डाक्टर! ऐसे पथ्य आहार विहारसे रह कि तुझे दूसरेसे प्रार्थना करनेका अवसर ही प्राप्त न हो। अरे आत्मन् तू सहज स्वरूपकी दृष्टि करके वर्तता रह कि तुझे किसी क्लेशका ही अवसर प्राप्त न हो।

ॐ शुद्ध चिदस्मि। ॐ तत् सत्। शब्दब्रह्मणे नम., ज्ञानब्रह्मणे नम, सद्ब्रह्मणे नम।

१९ मार्च १९६०

हे आत्मन्! तू शुद्धसत्ताक है जैसे कि अन्य पदार्थ शुद्धसत्ताक है। अत तुझमे न कर्मकलङ्कका प्रवेश है न शरीरका प्रवेश है। यही स्वरूपकी दृढ़ता है

एक क्षेत्रावगाह होकर भी किसी पदार्थका अन्यपदार्थके स्वरूपमे प्रवेश नही है।

हे प्रभो ! तेरा स्वरूप निर्भय है, नि शङ्क है, निर्मल है। कोई प्रभु अपनी महिमा भूलकर कुछ सोचे विचारे तो भी उसकी महिमा रक्षित है, उसका व्यक्त प्रभाव चाहे कभी आवे। लोकजन कहते है कि घट घटमे (प्रत्येक जीवमे) परमात्मा है। अरे यह द्विविधा तो व्यक्ति अव्यक्ति ने कर दी, वास्तवमे तो घट घट (प्रत्येक जीव) मे स्वय परमात्मा है। परन्तु, परमात्मत्व तो अव्यक्त है और घट घट (व्यवहार जीव) व्यक्त है, इस लिये व्यक्तको आधार बनाकर अव्यक्तको आधेय माना है। ॐ सच्चिदानन्दस्वरूपाय नम ।

२० मार्च १९६०

लोकमे दृष्टिपसार कर देखा —अनेको लोग बडा वैभव पा रहे हैं, आनन्द कर रहे है, गर्वकर रहे है, मस्त हो रहे है। अव्वल तो उनकी असलियत क्या मालूम। अथवा मालूम ही है—मोहभाव तो छूटा नही, तत्त्वज्ञान तो हुआ नही सो विकल्प ही विकल्पमे पडे रहते है यह स्थिति निश्चित है उनकी। सो भैया विकल्पविडम्बनामे आनन्द पाया भी है किसीने। अच्छा, दया करो, भला मानो, किन्तु लोकमे और भी तो दृष्टि पसार, इससे भी अधिक दृष्टिपसार, लोककी सीमा तक दृष्टि पसार, देख यह ३४३ घन राजू प्रमाण लोक है। इसमे ८४ लाख योनियोमे जन्म ले ले कर करीब १९७॥ लाख कुल कोटि प्रमाण शरीर धारण कर करके वरबाद हो रहे इन अनन्तानन्त प्राणियोको देख।

देख निमित्त नैमित्तिकभाव अटल है। कोई आगका टुकडा कही फैंक दे जहाँ कपडा, कागज वगैरह हो, जलकर ही रहता है। हाँ साधारण (कमजोर) आगका टुकडा हो तो कागज न जले। यहा भी निमित्तिनैमित्तिक भावका कानून नही टूटा। कैसे शक्तिशाली पदार्थको निमित्त पाकर कैसी योग्यतावाला पदार्थ किस रूप परिणम जाता है यह मर्म ध्यानमे रहना चाहिये। निमित्तके अभावमे पदार्थका कैसा परिणमन होता है, यह भी एक खास बात है, यहा भी निमित्त नैमित्तिक भावका कानून नही टूटता। जहा अन्य पर दृष्टि नही हैं वहाँ शुद्धता देखी जाती है।

२१ मार्च १६६०

अरे पगले ! अपना तो कुछ सोचकर। अब तक सदा घडाधड परकी चिन्तायें की। पर तो पर ही है, तेरेमे सर्वथा भिन्न है। किसी अन्यमे तुझे मिलेगा क्या ? कुछ नही। देख अपनेको देख। निमित्त नैमित्तिकभावका कानून अज्ञानी पालते ही रहेगे, तेरेमे नास्तिकी अपेक्षासे पालता रहेगा। देख, शुद्ध स्वरूपको देख, अद्वैतभावको देख, निरपेक्ष तत्त्वको देख, स्वतन्त्र तत्त्वको देख, अलौकिक वैभवको देख, अपूर्व देखनको देख। मुक्ति ज्ञानसे ही होगी, निमित्त नैमित्त भावकी पकडसे न होगी। ज्ञान ज्ञानमे ही मिलेगा, ढरके ढेर भी कर्म करो तो उसमे किसीमे भी नही मिलेगा। निज शुद्ध स्वरूपास्तित्वको देख, प्रतिभासस्वरूपको देख, उसमे ही प्रीतिकर तृप्ति कर, तुष्टि कर।

ॐ शुद्ध चिदस्मि।

२२ मार्च १६६०

मुझे कुछ करना है इस विकल्पने आकुलता मचा रखी है, तिस पर भी तो देख ऊधम जो कर नही सकता, कर नही सका, कर नही सकेगा, उसके पुलावे बांध रहा है। तू अपनी शक्तियोके परिणमनके अतिरिक्त और भी कुछ कर सकते हो ? नही। अल्प कुछ नही कर सकते हो। तो लो सुनो कुछ करनेका बिकल्प ही करना है, तो जो तुम कर सकते हो उतना ही विकल्प करो, ऊधम तो न मचावो।

हे प्रिय ! स्वच्छस्वभावी होकर भी परमात्मसदृश होकर भी यह क्या स्थिति बनाई जा रही है ? अफसोस ! अफसोस होना चाहिये उल्टी चालपर तुम्हे। क्या विषय कषायके परिणाम तुम्हारे भगवान है ? क्या तुमने अपने पुराण पुरुषोके चरित्रका स्मरण नही किया है ? पवित्र कुलमे उत्पन्न होकर मोक्षमार्ग के विरुद्ध हठ करनेमे तुझे हिचकिचाहट नही होती।

अरे ! मूढ पर्यायकी मूढता छोडो, अपनेमे अपने आप सुखी होओ।

२३ मार्च १६६०

तू किसीकी आशा मत रख समस्त भी परद्रव्य इकट्ठा होकर चाहे तो भी

तेरा परिणमन अन्य वह कोई नही कर सकता। वस्तुस्वभाव कैसा अडिग है। यह आज जैसा है तैसा ही अनादिसे है। पहिले क्या था ? इस खोजमे बडे बडे वैज्ञानिक यत्नशील है। अरे भैया ! जो आज है सो पहिले था। पहिले परिणमन और था आज परिणमन और है अथवा सादृश्य से देखो तो ऐसा ही पहिले था ऐसा ही आज है। क्या खोज करना। दिखता तो सामने है। वस्तु स्वभाव उत्पाद व्यय ध्रौव्ययुक्त है सो यह आज है पहिले न था ऐसा तो है नही है।

प्रिय ! देख, अपनी कुशलता देख। ध्यानमे लीन बन। अपना आनन्द खुद भोग।

२४ मार्च १९६०

यहा देखो, सब ओर देखो, बताओ किसीसे आशा है कुछ कि कोई मदद कर देगा। तू सत् है, मात्र अपनेमे परिणमनशील है इसमे बाधक कोई हो नही सकता क्योकि सब सत् है और मात्र अपनेमे परिणमनशील हैं, फिर कोई किसी का बाधक कैसे हो सकता।

हे आत्मन् ! तू ही तो तेरा सर्वस्व है किसी भी परपदार्थका अपने हित के साधक जानकर आदर क्यो करता है ? जो विभाव पैदा होते है तुझमे तादात्म्यसे होते है, वे तक तो दूसरे क्षण ठहर नही पाते और जब आते है तभी क्लेश करने वाले होते है। बता फिर प्रादेशिकभेद वाले पृथक् अन्य पदार्थ तेरे क्या हितमे हो सकते है।

२५ मार्च १९६०

हे आत्मन् ! जब तुम्हे अपना स्वरूप याद नही रहता है, तब बडी विडम्बनामे पड जाते हो। देखो प्रिय ! तू तो ज्ञान आनन्दका पुञ्ज है। अपने स्वाभावका विश्वास कर तू अपने आप आनन्दमय है, अपने आप ज्ञानमय है। हे नाथ ! तू अनादिसे स्वय सत् है, अतएव सुरक्षित है। तेरा कुछ विगाड होना परसे ऐसा तो भाव ही न कर। देख तू बिगडेगा तो अपने भावसे बिगडेगा। जब तू बिगडेगा तेरी रक्षा करने वाला कोई न होगा।

देख तेरी जुम्मेदारी तेरे ऊपर ही निर्भर है। भावमे कभी भी शिथिलता मत लावो।

२६ मार्च १९६०

सत्सङ्गति वहुत आवश्यक चीज है। सत्सङ्गतिके विना मनका ठिकाने रहना वडा कठिन है। वडा वैभव व आय त्यागकर जो त्यागी होते हैं वे बडे लाभ (आत्मज्ञान) के उद्देश्यसे त्यागी हुऐ हैं। अत ज्ञानाराधना आदि आत्मोन्नतिके कार्यमे दत्त चित्त रहते हैं क्योकि उनकी प्रकृति यह पडी हुई है कि जो छोडा उससे कई गुणा सत्य लाभ लेना। यदि लौकिक आराम, विषय साधना का ही ख्याल होता तो आराम व विषयका साधनभूत वैभव ही क्यो छोडा जाता। सो वैभवको त्यागकर जो त्यागी होते हैं, उनकी प्रकृतिका उच्च होना प्राकृतिक बात है।

२७ मार्च १९६०

मो लोकमे सवसे बडी खुशी विवाहमे मानते हैं, अधिक गाजे-वाजे इसी अवसरमे देखे जाते है तथा मवसे प्रधान रिश्ता ससुरालका माना जाता है। रिश्ते तो सभी किसी न किमी रूपमे ससुरालके ही माने जाते हैं। कोई पिता के वहिनकी ससुराल, कोई दादाकी ससुराल, कोई वहिनकी ससुराल, कोई माताकी वहिनकी ससुराल, कोई पिताकी ससुराल, कोई खुदकी ससुराल इत्यादि रूपसे ही तो फूफा, चाचा, वहिनोई, मौसा, ससुर आदि रिश्ते हो गये हैं। तात्पर्य यह कि सर्वत्र मोहलोकमे अब्रह्मचर्यका वोलवाला है। सो ससार तो ससार ही है। इसमे आश्चर्य क्या हो? आश्चर्य तो लोगोको उन पर होता है जो विषयोकी उपेक्षा कर देते है ज्ञानका फल उपेक्षा है। उपेक्षा ही शान्तिकी जननी है। सार वैभव तत्त्वज्ञान है। महान् आत्मा तो तत्त्वज्ञानकी ही खुशी मानते हैं।

२८ मार्च १९६०

निज आत्मस्वभावकी दृढ उपासना ही वडप्पनका कार्य है। लौकिक विषयके सकल्प विकल्प कितने ही उस कालमे प्रिय लगते हैं, किन्तु हे वे सब

अनर्थरूप। धन्य है वह निर्मल उपयोग जिसमे निज ज्ञायकस्वरूपके समीप आत्मशक्ति वर्तती रहती है। प्रकट असार किन्तु अविवेकियोको सर्वस्व लगने वाले ये पञ्चेन्द्रिय विषय प्रसङ्ग ही तो नाना दुर्गतियोके कारण है। अन्यथा अर्थात् इन्द्रिय विषय प्रसङ्गका उपयोग रच भी न हो तो तुम्ही बतावो अब क्लेश क्या रहा ?

३० मार्च १९६०

हे सुखैषी ! यह निश्चयकर कि जो आनन्द शुद्ध विचारोमे है वह आनन्द कुविचारोमे असभव है। जो आनन्द आत्माश्रयणमे है वह आनन्द पराश्रयणमे असभव है।

कुविचार अथवा परदृष्टिमे चाहे कितना ही सुख दिख रहा हो उसे विडम्बना ही जान। उसका फल तत्काल आकुलता तथा आगेके लिये घोर पछतावा है। अनादिकालसे लगे हुए, चले आ रहे सस्कारोको नेश्त नाबूत कर देना महान् कार्य है, उत्तम कार्य है। एतदर्थ सब कुछ त्यागना पडे तो उसे भी साधारण बात समझो।

हे आत्मन् ! तू तो ज्ञाता द्रष्टा रह, नाटकदर्शक बन। निज भूमिमे जो औपाधिक चित्रण है उसे औपाधिक जान व तत्क्षण नष्ट होता हुआ देख। तू तो नाटकदर्शक बन। हैरानी किसी भी बातकी नही, यदि तू अपने अवधान मे है तो। शतावधानीसे स्वावधानी महान् है।

हे प्रभो ! जैसा तू निर्मल है वैसा ही मैं निर्मल हूँ, क्योंकि चेतन द्रव्य तो समान है, केवल शक्ति व्यक्तिका भेद है।

ॐ णमो अरहताण, सोऽह , ॐ णमो सिद्धाण, सोऽह ,
ॐ णमो आयरियाण, सोऽह , ॐ णमो उवज्झायाण, सोऽह ,
ॐ णमो लोए सव्वसाहूण, सोऽह।

३१ मार्च १९६०

अहो सत्सङ्ग, गुणवाणी, सहजमुद्रा, प्रभुदर्शन।
सहज शिवमार्ग दरशाते—शरण है स्वात्म अवलम्बन ।।टेक०।।

ये नव तत्वोमे रहता भी न अपनी एकता त्यागे।
सकल परभावसे ये भिन्न जग-मग ज्योतिसे जागे॥
ये शाश्वत पूर्ण प्रभु भी पूर्ण पूर्णसे पूर्ण निष्पादन।
पूर्ण कैवल्य परिणतिका पूर्ण निजब्रह्म ही साधन॥१॥अहो०॥
साधु, पाठक, मुनीश्वर, जिन, सिद्ध है आत्म सदर्शन।
सहज हो शुद्ध प्रभुपदका अभेदस्मरण अभिवन्दन॥
स्वय कर्ता, स्वय कारण, स्वय कर्महि, स्वय फल है।
इसी निश्चयसे साधकका ध्यान होता अनुत्तम है॥२॥अहो०॥
अहो सर्वत्र दिखती आत्म-प्रभुकी ज्योति व कलायें।
इन्हींके द्वार इनके पार सहज निज ब्रह्मको पायें॥
निरजन शुद्ध ज्ञायक देवका हो नित्य उद्यापन।
निरन्तर हो सहज आनन्द अमृतका ही उद्भावन॥अहो०॥३॥

१ अप्रैल १९६०

जीव जो भी करते हैं अपना ही परिणमन करते हैं। हाँ, कोई परिणमन ऐसा होता है जिसका विषयभूत परद्रव्य होता है, कोई परिणमन ऐसा होता है कि जिसका विषयभूत परद्रव्य नही है।

जिसका विषय परपदार्थ हैं वे परिणाम विभाव परिणाम कहलाते हैं। विभाव परिणामोमे भी होता तो परपदार्थ विषय ज्ञान परिणामका, परन्तु ज्ञानपरिणाम द्वारा विषय किये गये परपदार्थके विषयमे ही राग, द्वेष आदि तरगें होती हैं, इस लिये राग, द्वेष अधिक विभावोका भी विषय परपदार्थ कहा जाता है। वस्तुत सर्वत्र विभावोमे भी जीव जो करता है अपना ही करता है। कुछ करते हुए भी जो फल होता है वह अपने ही परिणमनरूप (सुख, दुःख या आनन्द) होता है। इस तरह कर्ता, कर्म व फल आत्मा ही है। इतना ही नही यह सब कुछ चूंकि परद्रव्य द्वारा नही होता अत करण भी आत्मा है। इसी प्रकार सर्व आत्मा भी स्वयके ही कर्ता, करण, कर्म व फल हैं। इसी तरह सभी अचेतन पदार्थ भी स्वयके ही कर्ता, करण, कर्म व फल

हैं। तो अब बतावो कि हे आत्मन् ! तेरा किसी भी परपदार्थके साथ क्या रिश्ता है ? कुछ भी नही।

तत्त्वज्ञानी, तत्त्वप्रेमी जीव ही वास्तवमे सुखी है। इसका कारण यह है कि उनके परद्रव्यमे कर्तत्वबुद्धि नहीं होती।

२ अप्रैल १९६०

जितने एकाकी रहोगे उतना ही अनाकुलताका अवसर मिलता रहेगा। आत्मनुभवकी साधना निर्जन वनस्थलियोंमे विवेकियोको सुगम है। सर्व चिन्ताओको छोडकर एक शुद्ध (केवल) ज्ञायकभावका ही उपयोग बनाना व अनुभव करना ही उत्कृष्ट कार्य है। इसी कार्यके आधारसे ज्ञानी आत्मा कार्य परमात्मा होते हैं।

३ अप्रैल १९६०

हे प्रिय आत्मन् ! अपने पर दया नही करते हो। विभावोको जैसे वे हैं तैसे नही जानना चाहते हो। विभावोके आधीन बनकर अमूल्य अवसर, उद्धार का मौका यो ही गमानेमे क्या सार है ? देखो ऊधममे न यहा शान्ति है और न परलोकमे शान्ति है। परका उपयोग हटाकर आत्मस्वभावको जाननेकी स्थिति प्राप्त करो तो यहाँ भी शान्ति है, परलोकमे भी शान्ति है।

तात्त्विक वात तो यह है कि मैं जो हूँ सो ही हू, यह वात अनुभवगम्य है फिर भी यदि बताना ही हे कि मैं कैसा हूँ, अथवा शुद्ध अनुभवमे स्थिरता जब नही रहती तब अनुभवगम्य तत्त्वकी चर्चा करना विशेष रुचती हे सो निज व परको कुछ कहना ही है तो चेतने (जानने) रूप भावके वाचक चेतन, ज्ञायक, आत्मा आदि शब्दोसे कहा जाता हे। फिर और भेदकी वात बढाते जाओ। इन सब कथनियोका प्रयोजन निर्विकल्प चैतन्यस्वभावका स्पर्श (अनुभव) करानेका है।

ॐ शुद्धं चिदस्मि। शुद्धं चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्म्।

४ अप्रैल १९६०

निम्न प्रकारसे स्वर शास्त्रोके अनुसार शुभाशुभका वर्णन देखकर केवल इन्हे अनुभावक समझो, कर्ता न समझो।

शुभाशुभ विचार— मेष सक्रान्तिके प्रवेश समय चन्द्रस्वरमे पृथ्वी या जल तत्वका होना अत्यन्त शुभ। सूर्यस्वरमे वायुतत्वका होना मध्यम। किसी भी स्वरमे अग्नितत्वका होना अशुभ, आकाशतत्वका होना अत्यन्त अशुभ।

चैत्रसुदी १ को प्रात -- चन्द्रस्वरमे पृथ्वी व जल तत्वका होना अत्यन्त शुभ। सूर्यस्वरमे जल व पृथ्वीका होना मध्यम। सूर्यस्वरमे वायु तत्वका होना जघन्य शुभ। किसी भी स्वरमे अग्नि तत्वका होना अशुभ व आकाश तत्वका होना अत्यन्त अशुभ। सुखमना स्वर भी अशुभ।

माघसुदी ७ व वैशाखसुदी ३ को भी उक्त प्रकारसे शुभाशुभा जानना चाहिये।

स्वयका शुभाशुभ— चैत्रसुदी १ को दिनभर चद्रस्वर न हो तो उसे अति उद्वेग रहेगा। चैत्रसुदी २ को दिनभर चन्द्रस्वर न चले तो परदेशमे गमन व दुख रहेगा। चैत्रसुदी ३ को दिनभर चन्द्रस्वर न चले तो रोग होगा। चैत्रसुदी ४ को दिनभर चन्द्रस्वर न हो तो नव मासमे मरण होगा। चैत्रसुदी ५ को दिन भर चन्द्रस्वर न हो तो वडा राजदड होगा। चैत्रसुदी ६ के दिन चन्द्रस्वर न हो, १ वर्षके भीतर वान्धवनाश होगा। चैत्रसुदी ७ के दिन चन्द्र-स्वर न हो तो उसकी स्त्रीका मरण होगा। चैत्रसुदी ८ के दिन चन्द्रस्वर न हो तो अति पीडा उपजे। उक्त दिनोमे यदि चन्द्रस्वर रहे तो शुभ है, यदि शुभ-तत्व भी साथ हो तो अधिक उत्तम है।

५ अप्रैल १९६०

प्रश्नकर्ताका फलाफल — चन्द्रस्वरम जलतत्व व पृथ्वी तत्व हो उस समय प्रश्न करे तो कार्य सिद्धि हो। सन्मुख, बायें व ऊपर खडा होकर प्रश्न करे व तब यदि चन्द्रस्वर हो तो कार्यसिद्धि, सभी चन्द्रयोग हो तो अत्यन्त शुभ। चन्द्रस्वरन बाये तरफ आकर पूछे तो कार्य सिद्ध।

चन्द्रस्वरमें दाहिने हाथकी तरफ कोई पूछे और सूर्यके तत्व, तिथि, वार न हो तो उसका कार्य न होगा। चन्द्रस्वरमे कोई नीचे, पीछे, दाहिनी ओरसे पूछे तो तो कार्य न हो होय। चन्द्रस्वरमे अग्नि, वायु, आकाश तत्व हो तो पृच्छकके कार्यकी असिद्धि।

सूर्यस्वरमे कोई नीचे, पीछे, दाहिने खडे होकर पूछे तो कार्यसिद्धि। सूर्य-स्वरमे दाहिने खडा कोई पूछे और लग्न वार तिथि भी सूर्यस्वरके हो तो उत्तम कार्यसिद्धि।

सूर्यस्वरमे कोई बाये ओरसे या सन्मुख या ऊपर खडे होकर पूछे और चन्द्रके योग न हो तो कार्य न हो सूर्यस्वरमे सन्मुख।

रोगीके सम्बन्धमे प्रश्नकर्ताका फलाफल — चन्द्रस्वरमे पृथ्वी तत्व हो व प्रश्नकर्ता चन्द्रकी दिशामे खडा पूछे तो रोगी नही विनशेगा। खाली स्वरमे आकर चलते स्वरकी ओरसे बात पूछे तो रोगी नही मरेगा।

सूर्यस्वरमे प्रश्नकर्ता बाईं ओरसे पूछे रोगीकी बात तो अशुभ। बहते स्वर की ओरसे आकर खाली स्वरकी ओरसे आकर पूछे तो रोगीको साता नही होगी।

स्वर चलता हो और व तत्व हो दूसरे स्वरके तो बताना रोगमिश्रता (वातादिकी मिश्रता) से हुआ है।

पूर्णस्वर (चलते स्वर) से ही आवे व उस स्वरकी ओरसे पूछे तो सफल कार्य ही सिद्धि कहे। खाली स्वरकी ओरसे आकर बहते स्वरकी ओरसे पूछे तो भी कार्य सिद्धि।

६ अप्रैल १९६०

पूर्णस्वरसे आकर खाली स्वरकी ओरसे पूछे तो कार्यकी असिद्धि। गुरुवार को वायु तत्व हो व शनिवारको आकाशतत्व हो तो रोगीके तो पूर्व रोगका नाश हो। बुधवारके प्रात पृथ्वी तत्व, सोमवारको जल तत्व हो तो शुभ।

योगाभ्यास, औषधि, राजसिंहासन, वस्त्रग्रहण, नवीनघर प्रवेश, प्रथम नगर प्रवेश, मन्दिर, प्रतिष्ठा, मकान, दानशाला आदि करनेमे तो चन्द्रस्वर

अच्छा है। सग्राम, मत्र, आराधना, दवा, भोजन, स्नान, व्यापार आदिक चरकालमे सूर्यस्वर अच्छा।

सुखमना स्वरमे कोई काज ठीक नही। इसमे समाधि, ध्यान करना उत्तम होता है।

७ अप्रैल १९६०

युद्ध सम्बन्धी बातका शुभाशुभ फल —स्वरज्ञाता चन्द्रस्वरमे युद्धको नही चलते, चले तो शत्रुकी जीत। सूर्यस्वरमे युद्धको चलते उसमे इष्टसिद्धि। खुद का व शत्रुका दोनोका स्वर दक्षिण है तो पहिले जिसने चढाई की उसकी जीत। सुखमनास्वरमे चले तो मृत्यु।

दूर देशके सग्रामको चन्द्रस्वरमे चलना शुभ। निकट देशके सग्रामको सूर्यस्वरमे चलना शुभ।

घायल पुरुपके विषयमे प्रश्नका फल —वहते स्वरसे आकर वहते स्वरकी ओरसे पूछे तो घाव नही ह ऐसा बतावे। खाली स्वरमे पूछे तो जिसके विषय मे पूछा उसको घाव होना बतावे।

पृथ्वी तत्त्वमे पूछे तो पेटमे घाव बतावे। जल तत्त्वमे पूछा तो पैरमे घाव बतावे। अग्नि तत्त्वमे पूछा तो वक्ष स्थल पर घाव बतावे। वायु तत्त्वमे पूछा तो जघा पर घाव बतावे। आकाश तत्त्वमे पूछा तो शिरमे घाव बतावे।

८ अप्रैल १९६०

युद्ध सम्बन्धी प्रश्नका शुभाशुभ फल —चन्द्रस्वरमे कोई युद्धकी बात सन्मुख या ऊपर दिशामे खडा कोई प्रश्न करे तो प्रश्नके सम अक्षर होने पर उसकी जीत बतावे।

पीछे, दाहिने, मध्यममे रहकर कोई प्रश्न करे तो विषमाक्षार व सूर्यस्वर हो तो जीत बतावे। यदि कोई स्वरकी दिशामे दोनोके युद्धमे किसकी जीतका प्रश्न करे तो जिसका नाम पहिले लिया उसकी जीत। यदि यही बात रिक्त पक्ष (खाली स्वर व उसकी दिशामे) पूछे तो जिसका नाम पहिले लिया उस की हार।

पृथ्वी तत्वमे संग्रामका प्रश्न हो या योद्धाके पृथ्वी तत्वमे युद्ध हो जाय तो दोनोकी बराबरी रहे। योद्धाके जल तत्वमे युद्ध हो या समाधायकके जल तत्व मे प्रश्न हो तो दोनोका मेल।

पृथ्वी, जल तत्व एकके हो, दूसरेको न हो तो जिसके पृथ्वी जल है उस की जीत। अग्नि, वायु, आकाश तत्वमे पूछे, लडे, प्रयाण करे तो हानि बतावे।

६ अप्रैल १९६०

गर्भस्थ संतानविषयक फलाफल —चन्द्रस्वरमे चन्द्रस्वरकी दिशामे कोई पूछे तो कन्या बतावे। सूर्यस्वरमे सूर्यस्वरकी दिशामे कोई पूछे तो पुत्र बतावे। सुखमनामे कोई पूछे तो नपुंसक बतावे।

सूर्यस्वरमे चन्द्रस्वर वाला प्रश्नकर्ता पूछे तो पुत्र कहे किन्तु अल्पायु बतावे। सूर्यस्वरमे सूर्यस्वर वाला प्रश्नकर्ता पूछे तो सुखदायक पुत्र बतावे।

चन्द्रस्वरमे सूर्यस्वर वाला प्रश्नकर्ता पूछे तो कन्या कहे किन्तु अल्पायु बतावे। चन्द्रस्वरमे चन्द्रस्वर वाला प्रश्नकर्ता पूछे तो कन्या व दीर्घायु बतावे।

पृथ्वी तत्वमे प्रश्नकर्ताको राजमान्य सुखी पुत्र कहे। जल तत्वमे धनी, भोगी पुत्र कहे।

अग्नितत्वमे पूछने पर गर्भपात या जन्मते मरण या भाग्यहीन कहे। वायु तत्वमे पूछने पर भी ऐसा। आकाश तत्वमे पूछने पर नपुंसक कहे या जब चन्द्रस्वर चले तब वन्ध्या कन्या कहे।

दोनो खाली स्वरमे पूछे तो दो कन्या। चन्द्र सूर्य दोनो स्वर चले किन्तु चन्द्रस्वर बलवान हो तो दो कन्या। चन्द्र सूर्य दोनो स्वर चले किन्तु सूर्य बलवान हो तो दो पुत्र गर्भमे बतावे।

१० अप्रैल १९६०

परदेशगमनका स्वर शास्त्रके अनुसार विचार—

चन्द्रस्वरमे दक्षिण व पश्चिम दिशामे गमन श्रेष्ठ। सूर्यस्वरमे पूर्व व उत्तर दिशामे गमन श्रेष्ठ। सूर्यस्वरमे दक्षिण पश्चिम गमन कष्टकारी। चन्द्र-

स्वरमे पूर्व उत्तर गमन कष्टकारी। सुखमना स्वरमे गमन ही नही करना चाहिये।

विदेशवासीकी क्षेमवार्ता सम्बन्धी फल विचार :—

जल तत्त्वमे पूछने पर 'सुखमे है जल्दी आवेगा' बतावे। पृथ्वी तत्त्वमे पूछने पर 'उसे कोई दुःख नही है' बतावे। वायु तत्त्वमे पूछने पर 'अपना स्थान छोडकर दूसरे स्थान गया उसे चित्तमे कुछ चिन्ता है' बतावे। अग्नि तत्त्वमे पूछने पर 'उसे बडा रोग या पीडा है' बतावे। आकाश तत्त्वमे पूछने पर अति अशुभ बतावे।

प्रातः की शय्यासनसे उठकर या किसी कार्यके अर्थ चलनेकी विधि—

यदि चन्द्रस्वर चलता हो तो आगे बाया पैरसे (मानो नापते हुए) चार कदम चले, फिर बाया पैर ही आगे धर कर चलना शुरु कर दे। यदि सूर्यस्वर चलता हो तो तीन पग दाहिने ही आगे रख कर, फिर दाहिना पैर आगे रखते हुए चलना शुरु दे।

स्वरके अनुसार भोजनपानकी विधि —

दक्षिण स्वर चलते हुएमे भोजन खाना प्रारभ करे, फिर पानी पीना, खाना खाना सभी आवश्यकतानुसार करता जावे। यदि केवल पानी पीना हो ता चन्द्रस्वर चलते हुएमे पीवे अन्यथा अपच व दृष्टि क्षीणता, बलहीनता होती है।

११ अप्रैल १६६०

स्वर बदलनेकी विधि— यदि सूर्यस्वर चल रहा है और चन्द्रस्वरकी आवश्यकता है तो दक्षिण काखमे पाममे नीचेकी नमकी घुटनेमे, मुट्ठीमे या कपडाकी गेंदसी बना कर दबा दे या नम दबाये हुए दाहिनी करवटसे लेट जावे। यदि चन्द्रस्वर चलता हो और सूर्यस्वरकी आवश्यकता हो तो यही प्रयोग बाये काख मे करे या बाये करवटसे लेट जावे।

आयु जाननेकी विधि— यदि दिनमे चन्द्रस्वर चले व रात्रिमे सूर्यस्वर चले तो दीर्घायु होती है। यदि ४८ घन्टे याने १६ प्रहर तक सूर्य स्वर ही चले तो

दो वर्षकी आयु जानना । यदि सूर्यस्वर तीन रात दिन तक चले तो एक वर्ष की आयु जानना। यदि ८ पहर यानि एक दिन रात सूर्यस्वर ही चले तो तीन वर्षकी आयु जानना । यदि १६ दिन तक रात दिन सूर्य स्वर चले तो एक मासकी आयु जानना । यदि एक माह तक रात दिन सूर्यस्वर चले तो दो दिन का जीवन जानना । यदि सुखमना स्वर पांच घड़ी चले तो मरण उसी काल जानना । यदि चन्द्रस्वर भी नहीं, सूर्यस्वर भी नहीं और सुखमना भी नहीं, किन्तु मुखसे ही चार घड़ी तक श्वास चले तो वही चार घड़ी ही जीवन जानना । यदि दिनमें तो सूर्यस्वर चले और रातमें चन्द्रस्वर चले तो ६ माह के जीवनका अनुमान करना ।

१२ अप्रैल १९६०

आयुके अनुमानके अन्य लक्षण— यदि तीन दिन तक रात-दिन आकाश तत्त्व चले तो एक वर्षका जीवन जानो । यदि चार दिन तक अहर्निश अग्नितत्त्व रहे तो ६ माहका जीवन जानो ।

दर्पणमें अपना और पर देखा दीखे परन्तु भृकुटि मध्य न दीखे तो २ दिन का जीवन जानो । नेत्रसे नासाग्र न दीखे, तो ५ दिन, जिह्वा न दीखे तो १ दिन, कण्ठमें छिद्र दीखे तो १० दिनका जीवन जानो ।

एक साथ लघुशंका, दीर्घशंका व पादन तीनों हों तो १० दिनका जीवन जानो ।

एक पक्ष तक विपरीत स्वर चले तो शरीरमें रोग हो । दो पक्ष विपरीत स्वर चले तो मित्र शत्रु होजाय । तीन पक्ष विपरीत स्वर चले तो मरण हो ।

मरण समयकी पहिचानका यह प्रयोजन है कि मरण निकट जानकर भी शीघ्र समाधिमरण ग्रहण करे तो उत्तम बात है ।

१३ अप्रैल १९६०

[illegible] लिये रोगनाश [illegible] प्रयोजन है, आपत्तियोंकी [illegible] करना । प्रायः [illegible] रोग [illegible] होते हैं [illegible] होता है । [illegible] [illegible]

तक है वहांसे नासिका द्वारसे निकलती है। इस नालको कोई वकनाल भी कहते हैं। किन्तु वहुमतमे नाभिमे पीठकी ओरसे ऊपरकी ओर मस्तकके बीच तक जानेवाली नालको वकनाल कहते हैं। वकनालसे वायु भावनाबलमे चलकर दशमद्वार तक पहुँचती है उत्तम ध्यानमे।

प्राणवायु व मनकी स्थिरताके समय उपयोग ज्ञानमात्र निर्विकल्प स्वरूपकी ओर हो तो षट्चक्रका भेदन हो जाता है। छह स्थानोमे कमल रचना है वह मुंदे हुए हालतमे है। जब ये कमल खिल जाते हैं और वायु दशमद्वार की ओर चलने लगती है तब इस स्थितिका षट्चक्रका भेदन करते है। षट् चक्र ये हैं—

(१) मूलाधारचक्र (गुदास्थानमे), (२) स्वाधिष्ठानचक्र (लिङ्गस्थानमे), (३) मणिपूरक चक्र (नाभिस्थानमे), (४) अनाहतचक्र (हृदय भागमे), (५) विशुद्धिचक्र (कण्ठभागमे), (६) सहस्रारचक्र (मस्तिष्कमे)।

१४ अप्रैल १९६०

स्वाध्याय भोजनके समान आवश्यक है। जैसे आनन्दके लिये भोजन आवश्यक माना गया है उससे भी अधिक आवश्यक स्वाध्याय है। जैसे भोजन का आनन्द तुरत आता है वैसे ही स्वाध्यायका आनन्द भी तुरत आता है। विशेषता यह है कि भोजनका आनन्द पराधीन है, वह भी आगे नही रहता तथा कभी रोगादिके मार्फत महासक्लेशका कारण हो जाता है, परन्तु स्वाध्यायका आनन्द स्वाधीन है, वह आगे भी रहता है तथा है भी शुद्ध सहज आनन्द।

ज्ञानधारा यथार्थ स्वरूपपर जावे इसमे ही भलाई है। अन्यथा जीवन मरण तो लगा है ही। चाहे कोई योग सीखे, चाहे कोई गृहस्थीका कर्तव्य निभाये — निजको निज परको परजान—इसीमे ही आनन्द मिलता है। गुण, कीर्ति गाने वाले सब इस रागी पुरुषके लिये दुश्मनोका काम कर रहे हैं। इनके ही ख्यालमे इस विवेकशील रागी पुरुषको भी बडा परिश्रम करना पडता। मिलना कुछ है नही उनसे।

मान व लोभ ये दो कषायें जीवको परेशान कर रहे हैं, इन्ही कषायोसे प्रेरित होकर क्रोध व माया भी करना पडती है। यदि मान व लोभ न हो तो

क्रोध व माया करनेकी नौबत नही आ सकती। मान पुष्ट न हो रहा हो तब क्रोध आता अथवा मान पुष्ट करनेके लिये मायावृत्ति करना पडती। इसी प्रकार जिस पदार्थ लोभ है उसके सयोगमे विघ्न होनेपर क्रोध करना पडता तथा उसके सयोगके लिये मायावृत्ति करनी पडती। मान व लोभ हटा देना सुखैषी का प्रथम कर्तव्य है— एतदर्थ भेदविज्ञान समर्थ उपाय है।

१५ अप्रैल १९६०

विषय कषाय भाव असार ही है। ये भाव औपाधिक परिणमन हैं। आत्मामे ये होते है दूसरे क्षण नष्ट हो जाते है किन्तु होते रहते है ऐसे ही विशिष्ट जातिके भाव प्रायः अन्तर्मुहूर्त तक। मोही जीव इन भावोमे स्वीयता अङ्गीकार कर लेते है और उस भावका जैसे पोषण हो वैसी प्रवृत्ति करते हैं। आखिर विषय कषाय भाव है तो असार ही, सो मोही जीव विषय कषायके कालमे नो सोच नही पाता कि ये असार हैं सो पोषणमे लगता, किन्तु अन्तमे इसी भवमे दुर्गति होती है और परभवमे भी दुर्गति होती है।

ज्ञानी जीवन को अपने स्वरूपका पता लग गया है वह आपका सहज स्वरूप ज्ञानानन्दघन देख रहा है। इस ज्ञायकभावके अनुभवमे तृप्ति होनेपर फिर और कुछ सुहाता ही नहीं है। अनुपम आनन्द निजस्वभावके उपयोगमे है। ज्ञानी जीव ने सर्वोत्कृष्ट समृद्धि अपने आपमे देखी है। वह कृतकृत्य है। उसे परपदार्थमे कुछ कर देनेका भाव ही नही उठता है। अहो, बडी अलौकिक दशा है ज्ञानीकी, बडा अलौकिक ज्ञान वैभव है ज्ञानीका।

यह ज्ञानस्वरूप एक बार पूरी तौर से निरावरण हो तो जाना चाहिये फिर कभी आवरणका, दोषका, दुःखका, ससारका, जन्मका कोई प्रसङ्ग कभी भी आ ही नही सकता।

"सर्वव्याप्येकचिद्रूपस्वरूपाय परात्मने, स्वोपलब्धि प्रतिष्ठाय ज्ञानानन्दात्मने नमः।"

१६ अप्रैल १९६०

हे प्रियतम निज ब्रह्म ! तेरा स्वरूप वह है जो परमब्रह्मकार्य परमात्मा

का है। तत्त्वपर दृष्टि दे, द्रव्यत्वपर दृष्टि दे। चीज तो वैसी ही है ना। अब रहा परिणमनका अन्तर, सो देख स्वरूपका मर्म जान ले, उस पर ही दृढ उपयोगकी ठान ले। प्यारे, यह अन्तर भी न रहेगा। प्रिय ! एक क्षण भी असत् सङ्ग न कर।

देख अब तुझ वर्तमान पर्यायसे बात कर रहा हू। भीतरके स्वामीको पहिचान, उस पर कृपाकर, उसकी भक्ति कर, उसकी उपासना कर। परवस्तु के उपयोगसे कोई सिद्धि नही है। अब अन्य कुछ न देख, आंखे बन्द कर। अब अन्य कथा कुछ न कह, मु ह बन्द कर।

कुछ काम तेरा बनेगा ही नही किसी भी परपदार्थमे। काम भी क्या बनना ? कुछ नही, क्योकि कोई अटक नही है। काम भी क्या करना ? कुछ नही, क्योकि कोई अटक नहीं है।

तो क्या काम बिना यह आत्मा रह जायगा ? नही, क्योकि उत्पादव्यय ध्रौव्य वस्तुका स्वभाव है। यह है और परिणमता रहता है, इतनी ही तो-तत्त्वकी बात है। इस सबके ज्ञाता द्रष्टा रहो।

देखो ज्ञाता द्रष्टा रहना यह ही तो इसका परिणमन है, बाकी तो और सब परिणमन तो जरूर है, किन्तु इसके ही स्वरससे उठा हुआ परिणमन् नही है, औपाधिक है। प्रियतम ! उसके भी ज्ञाता द्रष्टा रहो।

१७ अप्रैल १९६०

हे सुखैषी ! तुम हो और हो अपने ही द्रव्यक्षेत्रकालभावात्मक। तेरा स्वरूप ऐसा ही है ना। है, तो ऐसा ही मान। मान लिया ना। बस, अब शान्ति ही शान्ति है।

बडे बडे चक्रवर्तियोने चक्रवर्तित्वमे आनन्द न पाया। जिसपर गुजरती है वही जानता है। यो तो गरीब लोग समझते हैं कि यह लखपति सुखी होगा। लखपतिकी बात तो तुम यहाँ ही पहिचान सकते हो। पहिचान लिया ना। बस, ऐसा ही यहाँ सर्वत्र अन्धेर है। हाँ, तो चक्रवर्तियोने भी यह सारा साम्राज्य तृणवत् असार जानकर छोडा और लगे आत्मदेवकी आराधनामे, शुद्धात्माकी

भक्तिमे। देखो, न छोडते वे तो अन्तमे यो ही छूट जाता। छूटना तो सबका, यह सब समागम है ही, मनमे छोड दो तो बाकी जीवन आनन्दमय होगा और भविष्य भी आनन्दमय रहेगा।

देख, यह आत्मदेव स्वतन्त्र है, ज्ञानानन्दरस निर्भर है। यदि यह स्वय ज्ञानानन्दरस निर्भर न होता तो किसी भी उपायसे साधारण भी ज्ञान व आनन्द इसे प्राप्त न होता। बाह्य पदार्थका उपयोग आनन्दका बाधक है। मोही समझता है बाह्य पदार्थको आनन्दका साधक, समझने दो उसे वह ऐसा ही समझेगा, क्योंकि उदय अभी मिथ्यात्वका है, किन्तु वह तो आदर्श नही उपेक्ष्य ही तो है। आदर्श तो परमात्मदेव है जिनका स्वभाव व उपयोग धार अभिन्न हो रही है। ॐ नमः परमात्मदेवाय। ॐ शुद्धं चिदस्मि।

१८ अप्रैल १९६०

इस लोकमे नाना स्वाङ्गोमे अनेकों आये और अनेकों गये। इस दुनियामें सन्मानका मूल्य क्या है? कुछ नही और सन्मान चाहे जानेका मूल्य क्या है? सुगतिका त्याग व दुर्गतिका ग्रहण। सन्मान क्या है? दूसरे लोग हमे अच्छा समझते हैं इस जातिका विकल्प। जरा विचार तो करो इस विकल्पसे लाभ क्या है? क्या यह औपाधिक मलिन भाव नही है? क्या इसका परिणाम क्लेश नही है? क्या सार है गन्दे विचारमे? अरे प्रिय! क्यो व्यर्थमे अपनी हत्या करते हो? कर विचार देखहु मन माँही। मूं दहु आँख कितऊं कछु नाहिं॥

आत्माका रक्षक आत्मा ही है। अन्य कोई इसका रक्षक नही है। रक्षा भी इतनी ही करना है कि यथार्थ उपयोग बनाये रहो कि प्रत्येक द्रव्य स्वतन्त्र-स्वतन्त्र सत् है, किसी भी द्रव्यका किसी भी अन्य द्रव्यमे दखिला नही है। ऐसा ही जानो। इसका परिणाम यह होगा कि परसे सुख माननेकी बुद्धि दूर होगी, परमे कुछ करनेकी बुद्धि दूर होगी। इसका परिणाम यह होगा कि सब आकुलताओसे बच लोगे। इसका परिणाम यह होगा कि आकुताके निमित्तभूत कर्मका सश्लेश मिट जायगा। इसका फल यह होगा कि कभी भी आकुलताका

प्रसंग न आवेगा। 'आत्मज्ञान स्वय ज्ञान, ज्ञानादन्यत्करोति किम्। परद्रव्यस्य कर्तापि मोहोऽय व्यवहारीणाम्।'

१६ अप्रैल १६६०

'धन समाज गज बाज राज तो काम न आवे। ज्ञान आपका रूप भये फिर अचल रहावे।' भैया! प्रकट देख रहे हो, यह सब कुछ काम नही आनेका। तेरा स्वरूप ज्ञान है वह तेरे साथ सदैव है, काम भी आता वही है। देख, जितना आनन्द है वह ज्ञानकी कलाका परिणाम ही तो है कि अमुक प्रकारका ज्ञान करो तो आनन्द मिलता है। जितना सुख मानना है वह भी ज्ञानकी कला का परिणाम ही तो है कि अमुक प्रकारका ज्ञान बनाओ तो सुख मिलता है। जितना दुःख महसूस करना है वह भी तो ज्ञानकलाका ही तो परिणमन है कि अमुक प्रकारका ज्ञान करो तो दुःख मिलता है।

तू अपनेको सर्वत्र ज्ञानकलामय देख। ज्ञानका ही सर्वत्र साम्राज्य है, तेरे ही ज्ञानका तेरे लिये सर्वत्र साम्राज्य है। प्रिय! उधेडबुन बुनना छोड, निर्विकल्प, निस्तरङ्ग निजज्ञायकस्वरूपकी शरणमे रह।

बाह्यदृष्टि ही सारा सकट है। किसीके भी सकट सुनने बैठो, आदिसे अन्त तक, यही मर्म मिलेगा— बाह्यदृष्टि ही सारा सकट है। आत्मन्! बता, किसी बाह्य पदार्थसे तेरा रिश्ता क्या है? तेरा कोई लगता क्या है? कुछ भी नही, क्योकि सर्व द्रव्य अपने-अपने ही द्रव्य क्षेत्र काल भावमे ही रहते हैं, किसी द्रव्यसे किसी अन्य द्रव्यमे कुछ जाता ही नही है। ऐसे स्वतन्त्र स्वरूपी किसी भी पदार्थका उपयोग करनेसे लाभ क्या मिलेगा? लाभ क्या, हानि ही हानि है। अपनी बरबादी मत कर। अपने आत्मदेवकी रक्षा कर।

२० अप्रैल १६६०

आज आत्मविज्ञान भवन ऋषिकेशमे आये। शामकी सामायिकमे भाव हुआ कि प्राय ३ घटा ध्यान सामायिकमे, १॥ घटा जाप प्रतिक्रमण भक्तिमे, १॥ घन्टा लेखनमे, ३ घन्टा स्वाध्यायमे, ३ घन्टा परसेवामे, ३ घन्टा दैहिक चर्यामे, १॥ घन्टा नित्य पाठमे, १॥ घन्टा आन्तरिक विश्राममे व ६ घन्टा

शयनमे । इस प्रकार समय बीतना चाहिये तथा ६ बजे सूर्योदय व अस्त मान कर इस प्रकार प्रोग्राम हो व दिनमान हीनाधिक होने पर परिवर्तन हो--

४ बजे प्रात. से ४।। आ० स्वा०
४।। से ६ तक सामायिक ध्या० प्र०
६ से ७।। तक पर्य० आसन,
७।। से ८।। तक देववन्दन, प्रवचन स्तुति
८।। से ८।।। तक वार्तालाप,
८।।। से ९।।। तक पूजा व पाठ,
९।।। मे १०।।। तक शुद्धि, चर्या, स्थान
१०।।। से ११। तक विश्राम, ध्यान,
११। से १२।। तक सामा०, ध्या०, स्तु०
१२।। से ।।। तक विश्राम,
।।। से २। तक लेखन
२। से ३ तक स्वाध्याय,
३ से ३।। तक विश्राम ध्यान,
३।। से ४। तक शास्त्रश्रवण
४। से ५ तक प्रश्न समाधान,
५ से ५।।। तक पर्यटन, सेवा
५।।। से ७ तक सा० ध्या०,
७ से ७। तक विश्राम, ध्यान
७। से ८ तक पाठ,
८ से ९।। तक स्वाध्याय
९।। से ४ तक विश्राम, ध्यान, शयन ।

आत्माका अनन्य शरण आत्मा ही है । आत्मदेवकी दृष्टि रहे, उससे ही बात करने, उसके ही शरणमे ठहरने, उसमे ही प्रसाद पानेकी धुन हो तो परम आत्मदेवके दर्शन होते है अर्थात् परमात्मदेवके दर्शन होते है । जो तत्त्व परमात्मामे है वही तत्त्व मुझमे है, किन्तु विषय कषाय भावसे मलिन हुए उपयोग द्वारसे उसके दर्शन नही होते । उसके दर्शन होते है केवल आत्मदेवमे वासित उपयोग द्वारसे ।

२१ अप्रैल १९६०

जीवको बरबाद करने वाली दो प्रकारकी इच्छाये है— (१) भोगेच्छा, (२) मानेच्छा । दोनो प्रकारकी इच्छाये असार है । स्पर्शनेन्द्रियकी भोगेच्छा दो प्रकारकी है–एक मनोज्ञशीतोष्ण स्पर्शेच्छा, दूसरी कामेच्छा । ये दोनो ही माया है, असार है इनमे भी कामेच्छा तो अतिनिन्द्य है । यहाँ हाडके ठट्ठर पर चाम मढा है, जिस देहको देखकर मोहियोंके कामेच्छा जागृत होती है । देहमे सार

पकड लेने जैसी कहावतके अनुसार यह जीव अन्तमे अतिव्यामोही हो जायगा। सो पहिलेके ऊधमोका तो किञ्चित् इलाज हो सकता है, किन्तु आखिरी ऊधम तो बेइलाज है।

हे पुरुषतत्त्व! तुम तो चैतन्यस्वरूप ही हो, ये औपाधिक भाव आते हैं इन्हे तू अपना स्वरूप न मान। जो जिसे अपना मानता है वह उसीके अनुकूल वर्तता है। तू ने भगवान्‌को अपना माना क्या? देख, न माना हो तो अब मान जा, यह भगवान् हमारा देव है अर्थात् मेरे स्वरूपकी ही प्रतिकृति है, मेरे स्वरूपकी ही प्रतिमूर्ति है। यह हमारा ही तो विकास है अर्थात् चेतनाका ही तो विकास है। हे प्रभो! अहं ब्रह्मास्मि, तत्त्वमसि। हे सर्व जीवलोको! अहं ब्रह्मास्मि तत्त्वमसि। हे परमात्मतत्त्व! सोऽहं, सोऽहं, सोऽहं। ॐ शुद्ध चिदस्मि। शुद्ध चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम्।

२५ अप्रैल १९६०

हाय! रागकी विचित्रता! छिनमे कही, छिनमे कही पटक देता, लगा देता है इस जीवको रागविलास। कोई कोई योगी पुरुष आत्मबलसे उपशान्त कषाय जैसी निर्मल समाधिको प्राप्त कर लेते हैं, फिर भी रागका उदय आता और गिर जाता है। रे मानवकीट! तेरा भी तो कोई पता नही पडता कि तुझे अब क्या करना है? करने क्या चलेगा और होगा क्या? द्विविधा व द्वन्द्व की बातोका विश्वास नही। यह द्विविधा व द्वन्द्वमे है तभी तो इसका कुछ ठिकाना नही होता। द्विविधा व द्वन्द्व छूटनेका उपाय सम्यग्ज्ञान है।

सत् क्षेत्र, सत् पुरुष, सत् साधनके वातावरणमे रहना प्रगतिका कारण है। सत् क्षेत्र तो शीतप्रधान वनस्थली आदि हैं, सत् पुरुष ससार शरीर भोग-विरक्त आत्मज्ञ जन हैं। सत् साधन धार्मिक अनुकूल सहकारी पुरुष, शास्त्र आदि है।

देख, जो चाहे देख, किन्तु देख इस प्रकार कि वे मात्र अपने-अपने स्वरूपमे नजर आये। स्वतन्त्र, निजगुण पर्यायमय सब दीखे।

बाह्यकी ओर दृष्टि रहे, इससे बढकर और क्या सकट कहा जा सकता है?

२६ अप्रैल १९६०

हे आत्मन् ! जब तक निजविभावसे ग्लानि न आ जावे तब तक भेदविज्ञान भाये जा। भेदविज्ञानका फल है स्वरूपरुचि जगना व विभावसे उपेक्षा होना। रागादि विभाव तेरा स्वरूप नही है। इसमे आत्मीयता न कर, इसमे हित बुद्धि न कर। यह तो स्वय अमगलरूप है, स्वय अकल्याणस्वरूप है, इसमे आत्मतत्त्व की प्रतिष्ठा कैसे हो सकती है ?

आत्मदेव ! तुम्हारी निधि तुम्हारा सर्वस्व है। इसपर विश्वास नही होता अज्ञानी व भिखारियोको। जिन्हे अपने स्वरूपका, स्वरूप माहात्म्यका पता ही नही है वे अज्ञानी है और जिनके रुचि व इच्छा परपदार्थकी ओर लग रही है वे भिखारी है। अज्ञानपूर्ण व पराशापूर्ण जीवन-जीवन नही, किन्तु मरण है। जीये, तो जिये न जिये बराबर है।

श्रेष्ठ नरजन्म पाकर आत्महितका कोई काम नही किया तो क्या किया ? दिल्ली रहे, कितने समय ? १२ वर्ष, क्या किया ? भार झोखा। मनुष्यजन्ममे रहे, कितने समय ? १०—५० वर्ष, क्या किया ? पागलपन किया।

पापकर्मसे दूर रहना ही सबसे उत्तम और महती नीति है। जो लोग छुपकर जो चाहे अनर्थ किया जाय, वह प्रकट न हो सके ऐसा वातावरण व व्यवहार करना इसको नीति समझते है, वे गहन अन्धकारमे है। किया हुआ पाप फल देता है, किसीको तुरत किसीको १० वर्ष बाद, किसीको परभवमे। पाप कर्मसे दूर रहना ही उत्तम नीति है।

२७ अप्रैल १९६०

हे चेतन तू प्रतिभास स्वरूप है। जब यह उपयोग मात्र चेतन प्रतिभासका स्वरूप ही विषय बनाता है अर्थात् ज्ञेय बनाता है तो यह प्रतिभास सीमा नही रखता। चाहे इसमे सर्वज्ञेय प्रतिभास न हो तो भी सामान्यपने से सर्व लोक ज्ञेय हो रहा है, ऐसी चाल बनी है, व प्रतीत होती है।

हे आत्मन ! आत्मानुभवरस पिये जा, यही तात्त्विक सुधारस है, इसका पान करके अमर बन, परकी आशा छोड। सारी पृथ्वी भी तेरी कल्पनामे

तेरी हो जाय फिर भी तो यह सब छोडकर ही जाना है। रही प्रतिष्ठाकी बात, सो यहाँकी प्रतिष्ठामे बल क्या है ? प्रतिष्ठा भी कुछ नही है, उष्ट्राणा विवाहेषु गीत गायन्ति गर्दभा ।

हे आत्मदेव । विषय कषायसे रहित परिणामका आनन्द अनुपम है, यह तो कई बार समझा। उसी आनन्दके लिये उपयोग प्रयोग कर। तू ने बहुत सोचा कि आत्मकल्याणका ही उद्यम सर्वोपरि कार्य है। अत्र उपयोगद्वारसे इस ही निज ज्ञायक स्वभावका अनुभव कर। इसके अतिरिक्त अन्य सब काम असार ही है।

हे आत्मन् ! तेरा तू ही है, तेरा अन्य कोई रक्षक नही है। अपने आपके उपयोगमे अपने आपकी ही उपासना करके अपने ज्ञानसुधारसका पान करके तृप्त रह। इतना ही शास्त्रोका उपदेशसार है।

ॐ तत् सत् परमात्मने नम ।

२८ अप्रैल १९६०

जो पहिले जैन न थे और थे वेद वेदान्त न्याय मीमासा योग आदिके बहुश्रुत विद्वान्, वे साधारण कुछ निमित्त पाकर अन्तर्दृष्टिसे आत्मदर्शन करके जो जैन दर्शनके रसिक बने, उनकी कृतियोको, रचनाको, ग्रन्थोको देखकर पहिले तो आश्चर्य होता था कि जैनदर्शनके सकलसिद्धान्तोके अध्ययनमे तो इन्होने समय नही बिताया फिर कैसे जैनदर्शनका इतना अनुपम प्रतिपादन किया ? किन्तु यकायक ही अभी किसी समय ऐसा विदित होगया कि जैसे हिसाबोके गुर याद हो तो बडे बडे हिसाब सुगमतासे लगा दिये जाते हैं, इसी तरह सद्विद्या अथवा जैन दर्शनके गुर विदित हो तो युक्ति अनुभवसे सम्बन्ध रखनेवाला सकल सिद्धान्त विशद हो जाते हैं। जैन दर्शनके अर्थात् वस्तुस्वरूप एव आत्महित मार्ग के दो गुर मुख्य है— (१) उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्त सत्, (२) सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग । इन दो मन्त्रोकी अन्त साधना होनेपर अजित सकल विद्या यथार्थ प्रतिपादनमे सहायक हो जाती है।

उक्त बात पूज्य श्रीमद्विद्यानन्द स्वामीके द्वारा विरचित अष्टसहस्री व तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकालङ्कारके स्वाध्यायके समय उनके चरणभक्तिके साथ जगी।

पूज्यश्रीमद् भट्टाकलङ्कदेवकी अष्टशतियोका पूर्वापर विस्तृत सम्बन्ध जोडते हुए वस्तुस्वरूपका दर्शन कराना श्रीमद्विद्यानन्द जैसे योगीश्वरका ही काम है। ॐ विद्यानन्दात्मने नम ।

२६ अप्रैल १९६०

भवभ्रमणसे डरना भी धर्मरुचिका कारण है और आत्मस्वभावकी दृष्टि भी धर्मरुचिका कारण है। दोनोमे जब जब जो उपाय आते बने, उपाय करते रहना चाहिये।

जगतमे विभिन्न प्रकारके जीवोको देखकर भी शिक्षा ही मिलती है। देखो ये छिपकली कैसा व्यर्थका जानवर है, कैसी इसकी दशा है, किस पर ही इसकी नजर बनी रहती। यदि ऐसा ही भव तू ने पाया तो यही तो स्थिति होगी। देखो ये गैल गैल घूमने वाले कुत्ते। इनकी क्या स्थिति है? भूसते ही रहते, टुकडोको तरसते, लोगोकी गाली, ललकार व डडे सहते। यदि ऐसा ही भव तूने पाया तो यही तो स्थिति होगी। देखो ये गधे घोडे। इनकी क्या स्थिति है? क्या बनावट है? इसके ही आकारमे जीव फैल गया है। ये भार ढोते, चाबुक सहते, मालिकके आधीन रहते, खाना पीना भी सही नही मिलता। यदि ऐसा ही भव पाया तो यही तो स्थिति होगी। देखो ये कीडे मकोडे। ये यत्र तत्र भटकते, पशु व मनुष्य आदिके पैरसे कुचले जाते है। इनकी बात कोई पूछने वाला नही है, कुछ मनुष्यके कामके हुए तो कडाईमे पकाये जाते हैं, अनेको तो पक्षियोके ग्रास बनते है, ये क्या प्रगति करेगे? यदि ऐसा ही भव मिला तो यही तो स्थिति होगी। देखो ये पेड जल, आग आदि। इनकी क्या स्थिति है? जो चाहे तोड ले, पकाले कच्चा खा ले, आगपर पानी डाल दे। यदि ऐसा ही भव पाया तो यही स्थिति तो होगी। खुल खुल कर मानो ये मनुष्योको उपदेश दे रहे है। अरे मनुष्यो भवभ्रमणसे तो डरो, भवभ्रमण के काम तो न करो। पुण्य का उदय है, शक्ति मिली है, इसका उपयोग ससार वृद्धिमे न करो, आत्महित मे इसका उपयोग करो।

३० अप्रैल १९६०

जीवको सबसे बड़ा संकट लगा है तो अज्ञानका। अज्ञानी जीव एकका दूसरेसे सम्बन्ध मानते हैं, एकको दूसरेका कर्ता मानते हैं, एकको दूसरेकी क्रियाका फल भोगना मानते हैं, एकको दूसरेका स्वामी मानते हैं, एकको दूसरेका अधिकारी मानते हैं, एकसे दूसरेमें सुख, दुःख आदि आया हुआ मानते हैं। ये सब मान्यतायें विपुल संकट हैं, क्योंकि जो बात जैसी होनेकी नहीं है उसको माननेमें, चाहनेसे, विश्वासमें लानेसे वह वैसी तो हो न जायगी तो वहाँ आकुलता न हो तो क्या हो ?

अहो शान्ति अशान्तिका फैसला ज्ञानकलापर ही निर्भर है। हे आत्मन् ! जो जैसा है उसे वैसा मानना नहीं चाहते हो और घोर संकटोंमें बुद्धि जुटाये फिरते हो, यह कैसी विडम्बना है ? शान्तिका उपाय कितना सुगम है। इसके विरुद्ध कल्पना करो कि भूख प्यास बाधा मेटे बिना भी तो सरता नहीं। सो देखो, इन लौकिक उपायोंमें भी बाधा मेटना चाहते हो तो तुम्हीं बतावो यह बाधा कमसे कम कितने आरम्भसे मिट सकती है, जितनेमें मिट सकती है उतना तो साध्य है, सरल है। अधिक ऊटपटाङ्ग स्वच्छन्दताकी इच्छायें बढ़ाये कोई और उनकी पूर्तिके पुल बाँधे तो इस ऊधमकी जुम्मेवारी तो और कोई ले नहीं सकता और न अन्य कोई इलाज कर सकता। हा तो यह तो लौकिक बात है। परमार्थकी बात देखो तो ऐसा ही यत्न करो जिससे भूख प्यासकी बाधा बिलकुल ही समाप्त हो जाय। इतना ही नहीं अठारहों दोष न हों अन्यथा लौकिक पद्धतिमें कब तक बाधा मिटाई जा सकती है ? मिटेगी नहीं, बढ़ेगी।

१ मई १९६०

परमात्मदेवके स्वरूपको जानकर जिसने अपने स्वरूपको नहीं जाना उसने परमात्माको क्या जाना ? हे आत्मन् ! तेरा भी वही स्वरूप है जो परमात्माका स्वरूप है। परमात्मा भी चेतनतत्त्व है, तू भी चेतनतत्त्व है। जितनी शक्तियाँ परमात्माके लक्षण हैं, स्वभाव है, उतनी ही शक्तियाँ तेरे लक्षण हैं, स्वभाव है। परमात्मसदृश तत्त्व होकर भी अथवा परमात्मतत्त्वमय होकर भी संसार,

भिन्न जगतकी रुचि करनेसे तुझे उपेक्षा नही होती ? नही होती तो तेरा भवितव्य ही खोटा है। साहसकर, अपनेको सभाल, अपने अवधानसे सहित होओ। देख तो ज्ञानभाव व आनन्दभावका पुञ्ज ही तो है। इसमे परसे कोई आपत्ति ही नही आती। स्वय यह आत्मा अपने स्वभावके पास बसनेके उपयोगको न करके परके उन्मुख रहा करे तो इसमे आकुलता होना अनिवार्य स्वय हो गया।

बाह्य पदार्थ तो आश्रयभूत है, इनके साथ तो निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध भी वास्तवमे नही। हा, कर्मके साथ जीव भावका निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। इसमे भी जीवका भाव जीवसे होता, कर्मभाव कार्माणवर्गणासे होता। एकको निमित्त पाकर दूसरेमे जो अवस्था होती है सो वह दूसरेमे उसी दूसरे की परिणतिसे होती है। ऐसे स्वतन्त्र स्वरूप वाले जीव अपनी स्वतन्त्रताके अज्ञानसे भ्रमवश दु खी होते है।

२ मई १९६०

ॐ नमोऽनेकान्ताय, ॐ नम स्याद्वादाय, ॐ नमो रत्नत्रयाय।

जैन दर्शनकी सबसे बडी विशेपता वस्तुस्वरूपके प्रतिपादनकी है। वस्तुस्वरूपके अवगमसे ही मोह दूर हो सकता है। मोह तो यही है ना, जिसका कि व्यक्त रूप 'यह मेरा है' इस भावमे जचता है। 'यह मेरा नही है' यह प्रतीति आजावे, लो मोह दूर हो गया। यह मेरा न हो तभी तो यह मेरा नही, यह भाव आना चाहिये ना। यह मेरा नही है क्योकि प्रत्येक वस्तु अपने ही द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे है, परके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे नही है। इसी तत्त्वका वर्णन जैनदर्शनमे बडे विस्तारसे बताया। मोह दूर हुआ तो उपयोग परमे न ठहरा और स्वको छोड कर उपयोग अन्यत्र होता ही नही, वह तो परिणमन चलेगा ही। सो उपयोग आत्मामे स्थिर हो जाता है।

आत्मा आत्माको ही जाने, अनुभवे इससे बढकर अन्य कुछ है ही नही। ऐसा कर लिया जाय तो सर्वसिद्धि है। ऐसा किये विना दर दरका भटकना ही हाथ है।

प्रिय आत्मन् ! सुगम, स्वाधीन, आनन्दमय उपाय तो करो नहीं और दुर्गम, पराधीन, व्याकुलतामय उपाय करो तो इसको कौन विवेकी विवेक कह सकता है ? चल, हट परोपयोगोसे और नही तो देव शास्त्र, गुरु भक्तिके अतिरिक्त अन्य परोपयोगोसे तो हट ही जावो। ॐ शुद्ध चिदस्मि। शुद्ध चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम् ।

३ मई १९६०

जैन दर्शनमे सबसे बडी विशेषता वस्तुस्वरूपके वर्णन करनेकी है। वस्तु का स्वरूप उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मकतत्त्व है, वस्तु उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्त है। जो उत्पाद व्यय ध्रौव्ययुक्त है वह सत् है। वस्तु सत् है। वस्तु स्वत सत् है। वस्तु स्वत. उत्पाद व्यय ध्रौव्ययुक्त है। वस्तुमे उत्पाद व्यय ध्रौव्य स्वत हैं। प्रत्येक वस्तुमें उत्पाद व्यय ध्रौव्य स्वत स्वत हैं। इसका फलितार्थ यह भी है कि किसी भी वस्तुका उत्पाद व्यय ध्रौव्य परत नही है अर्थात् किसी भी वस्तुमे उत्पाद अन्य पदार्थसे नही होता, व्यय भी अन्य पदार्थसे नही होता, ध्रौव्य भी अन्य पदार्थसे नही होता। इसका स्पष्ट भाव यह है कि किसी भी पदार्थका परिणमन किसी अन्यके आधीन नही है। जहा पदार्थमे स्वभावसे विपरीत परिणमन होता है वहाँ परिणमने वाला पदार्थ ही परपदार्थ का निमित्तमात्र करके स्वय विभावरूप परिणमता है। यहाँ यद्यपि यह बात कही जा सकती है कि यह विभाव परिणमन निमित्तके अभावमे नही हो सकता, तथापि इस बातसे परिणमने वाले पदार्थमे पराधीनता नही आती, क्योकि परिणमने वाला पदार्थ यह हठ नही करता है कि मैं तो इसी परिणमनरूप परिणमूंगा। इसके तो परिणमनेका व्रत है, परिणमना भी स्वत है। परको निमित्त पाकर विभावरूप परिणमता तो वहाँ भी परिणमना स्वत है। काल द्रव्यके निमित्तसे कोई पदार्थ विभावरूप नही परिणमता।

४ मई १९६०

परिणमन सामान्यकी बात है वहाँ निमित्त साधारण है, वह काल द्रव्य है। काल द्रव्य परिणमनमात्रका निमित्त कारण है। परिणमनकी स्वतन्त्रता

प्रत्येक पदार्थमे है। चाहे कोई नैमित्तिक परिणमन हो, चाहे कोई स्वाभाविक परिणमन हो, सभी परिणमन स्वतन्त्र हैं।

ऐसे स्वतन्त्र-स्वतन्त्र पदार्थोके समूहरूप लोकमे जो जीव स्वतन्त्र न देख कर परतन्त्र होनेकी कल्पना करते हैं वे मोही हे, अज्ञानी है। जो निमित्त नैमित्तक व्यवस्था होते रहते भी वस्तुको स्वतन्त्र-स्वतन्त्र निरखते है वे विवेकी है, ज्ञानी है।

वस्तुकी स्वतन्त्रताकी प्रतीति होने पर मोह स्वय नही ठहर सकता। मोह न रहे यही सर्वोत्तम परिणमन है। निर्मोहता वस्तुस्वरूपके अवगमसे प्रकट होती है। निर्मोहताका ऐसा अमोघ उपाय मोहजेता जिनेन्द्रदेवके शासनमे प्रकट हुआ है। जिनका भवितव्य अच्छा होता है वे इस शासनके उपदेशकी पालना से कल्याण कर लेते है।

धर्मके नामका पुछल्ला लगानेसे कल्याण होता है यह बात नही है, किन्तु जिस प्रकार उपयोगकी स्वच्छता होती हो उस प्रकार उपयागको स्वच्छ रखने से कल्याण होता है यह स्पष्ट ही है। साथ ही जिनके उपदेशोसे उपयोगकी स्वच्छता प्राप्त होने लगती है उन प्रभुकी उपासना, भक्ति आदि कृतज्ञतावश होती ही है।

५ मई १९६०

परपदार्थ कुछ भी हो उसका सम्बन्ध अर्थात् उसकी ओर उन्मुख भाव होना केवल क्लेशका ही कारण होता है। मिलता तो आत्माको कुछ है नही। आत्मा अमूर्त है, अपनी ज्ञानादि शक्तियोका पिण्ड है। उसमे आ ही क्या सकता है परपदार्थसे ? हे प्रिय आत्मन् ! इतने आकुलित क्यो होते हो ? पर-पदार्थको त्यागनेमे विलम्ब या सकोच करनेकी आवश्यकता ही नही, क्योकि परके त्यागसे आत्मामे हानि तो कुछ होती ही नही, प्रत्युत प्रसन्नताकी वृद्धि होती है।

आत्मा आत्माके उपयोगमे रहे, इसमे जो आनन्द है, वह अन्यत्र है ही नही। आनन्द तो निराकुलताको कहते हैं सो निराकुलता आत्मानुभूतिमे है।

स्वरूप देख लो, जाँच कर लो, आकुलता कहाँसे, कैसे व क्यों आये ?

हे जिनेन्द्रदेव ! तुम्हारे परमपावन गुणविकासोंके ध्यानसे गुणों पर शीघ्र दृष्टि पहुचती है और अभेद होकर एक असाधारण चैतन्य स्वभाव पर उपयोग पहुँच जाता है। यही सार एव शरण है। ॐ नम सत्त्वहितङ्कराय।

किसी भी परवस्तुकी आशा क्यों ? परवस्तु न तेरे साथ आई, न तेरे साथ जावेगी, जितनी देरका समागम है यह दु खी और करनेका निमित्त है।

अहा ! दु खके कारणोंको छोडनेमे मोही जीवको बडी परेशानी दिखती है। परेशानी तो परके ईशान (स्वामी) बननेमे है।

६ मई १९६०

उपयोगकी स्वच्छता आत्माको शरण है। आत्माकी मलिनता आत्माको विडम्बना है। जिस आत्माके छिनमे महा अन्याय और छिनमे शुद्धवृत्तिका प्रतिभास होता है, वहाँ प्राय धोका मालूम होता है। इसका कारण भी यह जचता है कि यदि शुद्धवृत्तिका प्रतिभासवाला उपादान है तो उसमे एकदम विपरीत बात कैसे हो जावेगी।

देखो, लेश्यायें जैसे कृष्णके बाद इकदम कापोत भी नही हो सकती। कृष्ण के बाद नील व नीलके बाद कापोत हो पावेगी। इसी प्रकार यदि शुद्ध दृष्टि की योग्यतावाला उपादान है तो उसमे एकदम अन्यायके विपरीतभाव कैसे हो सकते है ?

७ मई १९६०

(१) मैं चैतन्यमात्र हू, शरीर मैं नही, पुरुष मैं नही, किसीका मैं कुछ नही, मैं चैतन्यमात्र हू।

(२) मैं केवल अपना परिणमन कर सकता हूँ, अपना ही भाव करता हूँ, ज्ञानका परिणमन करता हूँ। अन्य किसी पदार्थका परिणमन मैं कभी नही कर सकता। मैं केवल अपना परिणमन करता हूँ।

(३) मै केवल भावका फल भोगता हूँ, उसी समय भोगता हू, आकुलता भोगू या निराकुलता भोगू, अपना परिणमन ही भोगता हूँ।

(४) मेरा आत्मद्रव्य वही है (वैसा ही है) जैसा कि परमात्माका आत्मद्रव्य है, जो भी पर्यायका अन्तर है वह तो आत्मदृष्टिसे शीघ्र मिट जावगा।

(५) कुछ समय कुछ न सोचकर सहज विश्राम करना।

८ मई १९६०

आत्माको विषय व कषायोसे बचाना ही आत्माकी सुरक्षा है। विषयाभिलाप तो हेय है ही, कषायोसे भी आत्माको मिलता क्या है? किसी बाह्य पदार्थका कुछ परिणमन हुआ, वह अनिष्टमाना, लो, गुस्सा आगई। अरे बाह्य पदार्थ जैसा परिणमता है, परिणम रहा है। परिणमने दो। उससे तुम्हारा क्या बिगडेगा? तुम तुम ही हो, तुम्हारा ही परिणमन तुममे होगा, उतनेसे ही तुम्हारा सरोकार है। अरे भाई! क्यो ऊधम मचाते, अपने से बाहर क्यो होते, बाहर तो हो ही नही सकते अपनेमे, केवल ज्ञानकलाका दुरुपयोग करते हो। ससार विषम गहन वन है। इसमे रुलनेकी बडी विडम्बना है। इसकी यातनासे बचना है तो अपनको विषय कषायोमे बचावो।

विषय और कषाय मलिन पर्याय हैं, अध्रुव हैं, दूमरे क्षण नही ठहर सकते, दूसरे समय दूमरे परिणमन होते है। जो होते है, होकर दूमरे क्षण मिटते है उनपर ज्ञाताकी रति नही होती। अहो! सब बातोके ज्ञाता द्रष्टा रहो।

९ मई १९६०

हे आत्मन्! तेरा स्वरूप ही तुझमे तन्मय है। तेरेसे बाहर तेरा कुछ नही, तेरेसे बाहरका तुझमे आता कुछ नही। यहांके पदार्थोके सयोग वियोगमे तुझने इष्ट अनिष्ट कल्पनायें की हैं वह अज्ञानका फल है। यदि तेरेसे कुछ बाह्य पदार्थ दूसरेके पास चला गया तो बता अनिष्ट क्या हुआ? यहाँ न रहा वहाँ रहा, क्या होगया? ससारके जीव ही तो है, तुझ जैसे स्वरूपवाले ही तो है वे। पदार्थ कोई किसी खासके पास ही रह जावे ऐसा तो होता ही नही, फिर जो होता है होने दो, उसके ज्ञाता द्रष्टा रहो।

ॐ शुद्ध चिदस्मि।

१० मई १९६०

चीजके अर्जनमे क्लेश करना होता व नाशमे भी क्लेश करना पडता है। धनके कमानेमे क्लेश, नाशमे क्लेश व भोगमे भी क्लेश। भोगनेमे भी परिश्रम करना पडता सो उसका क्लेश करना पडता।

देखो—बाह्य वस्तुके कमानेमे दु ख, रक्षा करनेमे दु ख, भोगनेमे दु ख व नाशमे भी दु ख है। और तो क्या इसके विचार करनेमे ही दु.ख होने लगता है।

अरे भाई ! भवभ्रमणका भी तो भय करो। भवभ्रमणमे कैसी-कैसी विडम्बनाये है सो गतियोके स्वरूपको देखकर जान जाओ। निगोदसे लेकर पञ्चेन्द्रिय तक क्या-क्या दशाये होती है उनसे ही शिक्षा ले लो। जिसको गृहस्थीका ज्याद। फसाव नही वह आत्माकी सेवाका भाव न करे तो कैसा है वह ?

भव भ्रमणसे डरना व आत्मानुभवके लिये तरसना इससे बढकर और क्या हो सकता है। परिग्रह प्रेमका फल दु ख है। परिग्रह प्रेमसे ही भवभ्रमण होता है। हाय, रखा तो कुछ है नही अपना बाह्यपरिग्रहमे, किन्तु उस ओर दृष्टि करनेकी मूर्खताका परिणाम घोर क्लेश है।

११ मई १९६०

हे प्रिय ! ऐसा सत्य आग्रह करो कि एक भी परपदार्थको उपयोगमे न आने दो। क्यो आते वे ? यदि कहो कि ज्ञानका स्वरूप ही ऐसा है कि सभी कुछ उपयोगमे आता है, तो सुनो जब ऊधम मचाये बिना स्वभावत ऐसी बात होने लगे तब तो तू महान् है, उसे कोई नही रोकेगा, परन्तु यहाँ तो चल च-क्र चित्तको चञ्चल बनाकर उपयोग परपदार्थोंकी ओर चला रहे हो। तक तुम मिथ्या आशय वाले हो अर्थात् किसी बाह्य पदार्थको निमित्त करके होनेवाले विभावकी ओर आकर्षित होनेवाले हो, तब तकके लिये ही रोका जा रहा है कि तुम किसी परको उपयोगमे स्थान मत दो। जैसे कि जो वि- वनिता प्रौढ है, विषयानुभवकी विशेष योग्यता है, तभी तब उसे रोका जाता है

अन्यके घर जानेसे, किन्तु जो वृद्धा है, विषय कषाय भावसे शिथिल है उसे कोई नही रोका करता।

हे आत्मन्! अपने अवधानमे अपने आपको रख अर्थात् सावधान रह, स्वावधानी रह, शिवावधानी रह, शिवावधानी रह, शुभावधानी रह, सर्वावधानी रह। तू ही तेरा सर्वस्व है। ॐ तत् सत्।

१२ मई १९६०

किसी भी परद्रव्यकी इच्छा, प्रतीक्षा, अपेक्षा करना महान् सकट है। हाय मुफ्तका यह सकट प्रत्येक ससारी लादे हुए है। मिलने जुलनेका तो कुछ काम ही नही यातनाओका कोई पार नही। अहो आत्मदेव! तुम्हारे स्वरूप का दर्शन ही सत्य शरण है। आनन्दके निधान, ज्ञानके सागर, हे आत्मदेव! तुम ही मेरे उपयोगमे विराजो। विकल्पोके बादल मुझपर गिडगिडा रहे हैं जिनसे मैं बेचैन हो रहा हूँ। मेरा दर्द केवल निजब्रह्मका प्रसाद ही मेट सकता है। ॐ शुद्ध चिदस्मि, ॐ शुद्ध चिदस्मि, ॐ शुद्ध चिदस्मि। मैं शुद्ध चैतन्यमात्र हूँ।

जैसे कोई कुवर बालक किसी सबल बालकके दबावसे दुःखी होकर गाली देता है और इसके परिणामे सबलसे पिटता है, पिटनेका दर्द न सहकर पुनः गाली देता है। इसी क्रममे वह परेशान रहता है। इसी प्रकार यह अज्ञ प्राणी पूर्वकृत कर्मके उदयके निमित्तसे दुःखी होकर रागचेष्टा करता है और इसके परिणाममे फिर दुःखी होनेके लिये उपाय (कर्मबन्ध) कर लेता है सो पुनः दुःखी होकर रागचेष्टा करता है। इसी क्रममे यह परमात्मतत्त्व परेशान रहता है।

प्रिय आत्मन्! केवल सकल्प, भावनाका ही तो काम है। इतने स्वाधीन सरल कार्यमे उत्साह नही रख सकते तो फिर इसका रिजल्ट क्या होगा? यही तो जैसा कि यह जीवलोक नजर आ रहा है।

१३ मई १९६०

परकी ओर दृष्टि देनेका परिणाम भयावह होता है। जितने भी जगतमे

क्लेश है उसका मूल कारण परपदार्थोंमें आत्मबुद्धि लगाना है। अथवा यथार्थ ज्ञानका अभाव है। स्वरूपानुभव ही सुख है। आत्मा दु:खसे अछूता है। ऐसी स्वतन्त्रता होकर भी परपदार्थोंमें दृष्टि बनाकर देखना अन्याय है। किसपर अन्याय है? स्वयं अपने ऊपर अन्याय है। क्यों अन्याय है वह इस लिए कि परतन्त्र होके अपनी अवस्थाका फल भोगना है। कैसे है? यह बात थी। ही रही है, इसका क्या उत्तर देना?

मैं शुद्ध चिन्मात्र हूँ स्वभावमें पूर्ण हूँ, मुझमें किसी भी परद्रव्यका प्रवेश नहीं है, परभाव भी निमित्त पाकर आते हैं, मुझमें स्वरसत परभाव नहीं हैं अत मेरा परद्रव्य व परभावोंसे कोई सम्बन्ध नहीं है। इनका चिन्तन करके, उनमें दृष्टि लगा करके केवल अपनी हानि हो रही है।

हे प्रिय आत्मन्! तुम अपनेको मान आज पतन आपके बनोंगे न समझना तो क्या गया और कोई दूसरा उपाय भी है समझानेका। नहीं यही उपाय, अद्वैत उपाय ही ग्रहण करना है।

१४ मई १९६०

मैं द्रव्यसे शुद्ध हूँ अर्थात् मुझमें किसीभी परद्रव्यका तादात्म्य नहीं है। मैं स्वरसत निज असाधारण स्वभावमात्र हूँ।

१५ मई १९६०

बाह्य चारित्रका भी जिसके बन्धन है वह अनेक विपदाओंसे बच जाता है। फिर, अन्त:चारित्रका जिसके भजन हो रहा हो उसके विपदाका लेश भी कैसे कहा जा सकता है?

विपदा केवल कल्पनामात्र है। परपदार्थोंमें तो विपदा आती ही नहीं, विपदा भी क्या, कुछ भी नहीं आता। जो कुछ जिसका होता है वह उसका परिणमन है। जब बाह्य पदार्थसे इस आत्माका कुछ सम्बन्ध ही नहीं फिर वह विपदा व सम्पदा, सुख, दु:खका करनेवाला कैसे हो सकता है? केवल मनकी कल्पना ही क्लेश है। ज्ञानका किस प्रकार परिणमन हो कि सुख हो, ज्ञानका किस प्रकार परिणमन हो कि दु:ख हो, इसका तो अभी निर्णय कर लो, जल्दी निर्णय हो जायगा क्योंकि अनुभवमें आई हुई ये बातें हैं, मेरे ही नहीं, सबके।

१६ मई १९६०

अहो जैन वाणी निर्दोष हितकारिणी माता है। इसकी जिसने उपासनाकी, आराधनाकी, पूजा की, वह सर्व क्लेशोसे छूट जाता है।

१७ मई १९६०

समापवर्तक

२१०, १४०, २८० के कई होते हैं।

किन्तु उनमे बडी सख्या कौनसी है? इसको कहते हे महत्तम-समापवर्तक। जैसे—

२१०, १४०, २८० का महत्तम समापवर्तक—

```
१४०)२१०(१
    १४०
    ___
     ७०)१४०(२
        १४०
        ___
         ×
 ७०)२८०(४
    २८०
    ___
     ×   उत्तर हुआ ७०
```

उक्त तीन राशियोका महत्तम समापवर्तक हुआ ७०

१८ मई १९६०

लघुतम समापवर्त्य—

```
२| १६, २४, ३६, ६०
 |________________
२|  ८, १२, १८, ३०
 |________________
२|  ४,  ६,  ९, १५
 |________________
३|  २,  ३,  ९, १५
 |________________
 |  २,  १,  ३,  ५
 |________________
```

परिणाम —२×२×२×३×२×१×३×५=७२०

उक्त राशियोका लघुत्तम समापवर्त्य हुआ ७२०

१९ मई १९६०

वर्गमूल कैसे निकाला जाय—

```
    )९९२२५

      ३१५
   ३)९९२२५
      ९
 ६१)०९२
     ६१
६२५)३१२५
    ३१२५
      ×
```

उत्तर ९९२२५ का वर्गमूल ३१५ हुआ।

वर्गमूलका हिसाव जीवगणना, क्षेत्र, स्पर्शन आदिके विवरणके काममे आता है।

२० मई १९६०

घनमूल कैसे निकाला जाय—

```
   ⎧ ५ | १५६२५
५  ⎨ ५ |  ३१२५
   ⎩ ५ |   ६२५
   ⎧ ५ |   १२५
५  ⎩ ५ |    २५
       |     ५
```

५×५=२५ उत्तर हुआ १५६२५ का घनमूल २५।

घनमूलका हिसाव जीव गणना, क्षेत्र स्पर्शन आदिके विवरणके काँम आता है।

२१ मई १९६०

मनोरञ्जक प्रश्नोत्तर—

(१) ┬ निब उठाये बिना लिखो ।

(२) ।= ≡×। ‾ । पाच तकको सख्या उतनी ही लाइनो से बनावो।

(३) १, २, ३ गिनकर बिन्दी रखो, सीधा गिनो, बिन्दीपर एक मत गिनो, केवल एक खाली रहे ।

(४) १२ के आधे कितने ?

(५) ६ और ५ कितने NINE (।।। ।।।) (।।≡)

(६) ४ और ५ कितने TEN(। ।।।) (‾ ≡ ।)

(७) नौ मे क्या मिलानेसे ६ हो जायगा S,SIX!

(८) १०, पेडोको ५ लाइनमे रोपो, प्रति लाइनमे ४ पेड हो ।

(९) रामूके बापके चार लडके है, एकका नाम नरेन्द्र, दूसरेका नाम सुरेन्द्र तीसरेका नाम महेन्द्र, चौथेका नाम तुम बतावो (रामू)

(१०) १२ मे से ३० निकल गये कितने बचे (११)

(११) ९ पेडोको ८ लाइनमे रोपो, प्रत्येक लाइनमे ३–३ पेड आवे ⁝ ⁝ ⁝

(१२) ४ गज लम्बे व ४ गज चौडे कपडेके बराबर बराबर चार टुकडे बनाओ। प्रति एक टुकडा कितना लम्बा चौडा होगा ?
(२ गज लम्बा व २ गज चौडा)

(१३) ९ अक्षरका मेरा नाम उलटा सीधा एक समान (सदानवजीवनदास)

२२ मई १९६०

हे पुराण पुरुषो ! तुम्हारा चरित्र मेरे हृदयमे वसे । हे वृपभादि तीर्थङ्कर परम देव ! तुम्हारी सार्व अनुपम करुणाकी सीमापर आ तो गया, किन्तु, अब लौट न जाऊ, आपके शासनमे सच्चासेवक बन कर रहूँ, यही आपके शरणमे हार्दिक प्रार्थना है ।

हे भारत, बाहुबलि, राम, हनुमान आदि भगवतो ! तुम्हारी उदार, गभीर श्रेष्ठ कृतिया मेरे हृदयमे बसो, जिनके दिग्दर्शनके प्रसादसे यह उपासक सन्मार्ग होकर परमसतोष प्राप्त करे।

हे वीतरागी परमोपास्य महर्षियो, श्री पुष्पदत, भूतबलि, गुणधर, यतिवृषभ, पूज्यपाद, कुन्दकुन्द, वीरसेन, समन्तभद्र, अकलङ्क देव, अमृतचद्र, जयसेन, नेमिचद्र, विद्यानन्दि, पद्मप्रभमल धारिदेव, शिवकोटि आदि पूज्य आचार्यदेवो ! मैं आपके गुरुस्वरूपका अनन्य उपासक हू, किन्तु कर्मोका प्रेरा हुआ दीन अनाथ हूँ। आपका चरित्र मेरे हृदयमे बसे ताकि मैं उत्पथमे न पतित हो जाऊ और ज्ञानाराधनाके लिये सजग बना रहू।

हे प्रज्ञवर टोडरमल, सदासुख, भूधर, बनारसीदास, दौलतराम, भगवतीदास आदि महानुभावो ! तुम्हारी ज्ञानरुचिका स्मरण बना रहो, जिससे यह भी ज्ञानरुचिका योग करता रहे।

हे शिक्षागुरुजनो ! श्री गणेशप्रसादजी, भागीरथजी ! धर्ममाता चिरोजाबाई जी तथा अध्यापकजनो ! तुम्हारे अनुग्रहका चित्र या मेरी दृष्टिमे खिचा रहो, जिससे उस अनुग्रहका मूल्य समझकर थोथी बातोसे बचा रहूँ।

हे स्वर्गीय देह पिता गुलाबचद जी व माता तुलसाजी तुम्हारे गभीर व धार्मिकतासे ओतप्रोत सद्गतियोका स्मरण मुझे अनर्थोसे बचाता रहा है, स्वर्गीय सुशील गृहस्थकालिक वनिताको तुम्हारा शील व धर्मप्रेम का स्मरण पापोसे बचाता रहे।

२३ मई १९६०

विभावोका ज्ञाता व स्वभावका द्रष्टा जघन्य व मध्यम अन्तरात्मा हैरान है विभावोकी ओरसे, किन्तु साथ ही सतुष्ट है स्वभावकी प्रतीतिसे। अहो ! युद्ध तो यहाँ ही हो रहा है, उसकी कुशलता ज्ञानीके विचित्रता सहित है। कभी दिखनेमे यह आता है कि लो, अब तो यह चेतन गया, हारा, दबा, मिटा, किन्तु देखा जाता है जरासी देरमे कि इस ज्ञाताकी भूमिकामे, लो अब विभाव को अवकाश ही नही है। भावोकी विचित्रता विचित्र है। अरे पुमान् ! तू तो उठ और उठता ही जा। हार खातेमे तो बडा धोका है, कहो अनन्तभव निगोद

से फिर शुरू हो जाँय।

प्रिय आत्मन्! ये विभाव होते समय तो प्रिय लगते है, किन्तु इनकी रच भी प्रियता मत मान। तेरा विभावसे क्या सम्बन्ध, है? तू तो स्वरसत चिदानन्द मय है। अपने स्वरूप वैभवको देख। तू है और परिणमता रहता है, यही तो तेरा सर्वस्व है। तू अपने आप स्वरसत. कैसा परिणम सकता है? केवल एक प्रकारका ही परिणम सकता है, वही तो तेरा स्वरूप है। अन्य अनेको विषम परिणमन तेरी करतूत नही, अपनी करतूत मे रह।

ॐ शुद्ध चिदस्मि। शुद्धं चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम्। प्रभजामि शिव चिदिद सहजम्। ॐ शुद्ध चिदस्मि।

प्रिय आत्मन्! तेरे पर तेरी बडी जुम्मेवारी है। गैरजुम्मेवारसे रहकर अपना समय न गमा। जो तू करता है उसका फल तुरंत मिल जाता है। साथ ही उसके अनुरूप आगामी कालमे भी फल मिलनेका सस्कार बन जाता है। तू तो ज्ञाता द्रष्टा रहे, कर्ता मत बन।

२४ मई १९६०

परमात्मा व आत्मामे कुछ भेद नही है।
आतमस्वभावमे भी नेह खेद नही है॥ टेक॥
इक जान आतम ब्रह्मको इसमे ही सार है।
ससार तो अपार रार सब असार है॥
निजतोषमे सतोष जो भी ज्ञानी करेगा।
परमात्मतत्त्वका विराट रूप लखेगा॥ पर० ॥१॥
कठिनाई कुछ नही है, ज्ञानकी है जरूरत॥
सत्यार्थ ज्ञान होते ही सारी है सहूलत।
जैसा ही यम नियम समाधि होनेको होगा।
हो जायगा वो अपने आप फर्क न होगा॥ पर० ॥२॥
देखो तो अपने आपमे ब्रह्मत्व बसा है।
परदृष्टिसे ये लोकमे सबन फसा है॥
परसे पृथक् हो आपमे जब मग्न ये होगा।

सर्वज्ञ सहजानन्दमय परमात्मा होगा ।। परमात्मा० ।।३।।

२५ मई १९६०

आत्मा स्वरसत आपूर्ण चैतन्यमात्र है। उपाधिके समगमे स्वयके सस्कार के कारण क्रोधादिरूप परिणम जाता है। उपाधि और विभावमे परस्पर निमित्त नैमित्तिक सम्वन्ध है। विभाव उपाधिके निमित्तसे होते, उपाधि विभाव के निमित्तसे वनती। विभावका आधार चेतन है, उपाधिका आधार अचेतन है। इस प्रकार विभाव व उपाधि परस्पर अत्यन्त भिन्न है तथापि इनका परस्पर निमित्त नैमित्तिक सम्वन्ध है। ये क्रोधादि आत्माके चारित्र श्रद्धा आदि शक्तियो के विपरिणमन हैं। अत. न तो ये चेतन है और न अचेतन ह, किन्तु चिदाभास है। इन क्रोधादि विभावोको निजसर्वस्व मानना ही घोर अन्धकार है। इसी अन्धकारमें निजस्वरूप नजर नही आता। निजस्वरूप नजरमे न आनेपर परकी ओरका आकर्षण प्राकृतिक बात है।

आत्मन् ! परकी ओरके आकर्षणके भावमे शान्ति नही, निर्मलता नही, ज्योति नही। हे निज प्रभो ! अपनी प्रभुताको तो सभाल, अपने वैभवका अनन्त आनन्द तो प्राप्त कर। परकी ओरसे निवृत्त होओ, सर्वथा निवृत्त होओ, सारी शक्ति लगाकर निवृत्त होओ। प्रवृत्तिसे जीवका हित नहीं है, परन्तु जितनी अशक्तिमे आहारि प्रवृत्ति आवश्यक हे वह की जाना पडती है। प्रवृत्ति से सर्वप्रकार उपेक्षित होओ। ॐ शुद्ध चिदस्मि।

२६ मई १९६०

आत्माका कल्याण खुद ही कर सकता है। दुर्विचारोको तनिक भी अवसर देना दुर्विचारोका शिकार बन जाना है। दुर्विचारका इतना प्रसार होता है कि अनाचार (असदाचार) घर कर जाता है।

अहो आत्मन् ! तू परमात्माकी जातिका है, जितने गुण परमात्मामे है। उतने गुण तुझमे है, केवल विकासका ही तो अन्तर है। परमात्मामे गुणोका विकास परम है, तुझमे गुणोका विकास अपरम है। यह सव भी मात्र स्वदृष्टि व परदृष्टिका परिणाम है। जिसने स्वदृष्टि वनाई और उसीमे स्थिर रहे, वे

परम विकासको प्राप्त हो जाते है, किन्तु जो परदृष्टि बनाये रहता है वह ज्ञानादि गुणोके अपरम विकास तक ही रहता है तथा श्रद्धादि गुणोके विपरीत विकासमे रहता है। इसमे महान् अन्तरका कारण इतनीसी भूल है और इस सब अन्तरके मिट जानेका उपाय स्वदृष्टिरूप सुगम स्वाधीन पुरुषार्थ है।

हे निज प्रभो! क्यो दुखी हो रहे हो? दुखकी तो कोई बात ही नही है। तुम तो ज्ञानभाव व आनन्दभावके पुञ्ज ही हो, परिपूर्ण हो। कल्पना करके दुख बनाना इसमे क्या सार है?

२७ मई १६६०

हे आत्मन्! तेरा उद्धार तो तब ही है जब परमाणुमात्र भी परपदार्थमे रागबुद्धि न रहे। इस लटके हुए जीवनसे क्या लाभ है? जिसमे कुछ राग किया जा रहा हो और कुछ कल्याण साधनका उपाय किया जा रहा हो या तो कल्याणकी बात छोड, अज्ञानी जीवोकी तरह विषय कषायमे मस्त होकर रह और लम्बी सफरे किया कर या फिर सब परद्रव्यसे उपयोगको हटाकर निज आत्माकी रुचियाँ बनकर अपने स्वरूपमे अवधान रखले।

प्रिय आत्मन्! लोकमे रुलते-रुलते बडे सुन्दर योगसे आज तू इतनी पवित्र स्थितिमे आगया, सब कुछ समझ सकनेकी योग्यता पाई, आत्मदर्शन भी कुछ कुछ किया, सत्य तत्त्वज्ञान भी पाया। अब भी स्वावधान न कर सका, सावधान न हो सका तो प्यारे, खैर नही। सर्व विभ्रम छोडकर सर्वकल्पना जालको काटकर निज सहज स्वरूपके दर्शनरूप अमृतका पान करके पूर्ण शान्त, स्वाधीन, अनन्तानन्दमय बन। देख अवसर चूके बादका कुछ पता नही। इस लोकमे तेरा अन्य कुछ भी चाहे चेतन हो या अचेतन हो, कोई भी शरण नही। अपने मनको स्वच्छन्द मत बना। मुश्किलसे तो भव मिला और उसका दुरुपयोग किया तो इसका परिणाम यह है कि असज्ञी बनेगा। अहो, प्रभजामि शिव चिदिद सहजभं।

२८ मई १६६०

एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका परिणमन नही करता, यह एक पूर्ण तथ्य है। जो

प्राणी इस तथ्यके विरुद्ध कल्पना उठाते हैं वे दुःखी रहते हैं। प्रिय आत्मन्! सत्यका भाव रखकर सत्यका आग्रह करके अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त कर! जीवन में अनेक संघर्ष, अनेक समागम, अनेक संपर्क आते हैं, कोशिश तो कर अनेक संकल्प विकल्प मिटाकर सर्वत्र ज्ञाता द्रष्टा रहनेकी। तेरा कोई कुछ परिणमन नहीं करता, किसीके परिणमनसे तेरा कुछ भी बिगाड़ नहीं होता। जहाँ जो होता है उसके कारण अपने बिगाड़की कल्पना मत बना। लोकमें सभी जीव एक समान हैं, स्वरूप सबका एकसा है। सबका स्वरूपास्तित्व निज निजमें है। तेरा न कोई मित्र है, न तेरा शत्रु है। सभी जीव अपने अपने संस्कारोंके अनुकूल अपनी अपनी चेष्टायें किया करते हैं। तू अपने संस्कारके कारण उन्हें इष्ट अथवा अनिष्ट मान लेता है, एतावता वे कोई इष्ट तो हो न जावेंगे और अनिष्ट भी न हो जावेंगे। तेरी कल्पना हो है वैसी, वही कल्पना तेरी परिणति है उस समयकी। तू केवल अपना ही तो परिणमन कर सकता है। तथ्य तथ्य जान। एक द्रव्यके द्वारा दूसरेका परिणमन हुआ है, ऐसा कभी प्रतिभास मत होओ। मेरे द्वारा दूसरेका परिणमन हो जायगा ऐसा कभी प्रतिभास न हो। किसी अन्यकी चेष्टासे मेरा परिणमन होगा ऐसा कभी प्रतिभास मत हो। ॐ शुद्ध चिदस्मि। तत्त्वमसि। ॐ तत् सत्।

२६ मई १६६०

आत्मशान्ति मात्र स्वके आधीन है। परके निमित्तसे तो अशान्ति ही संभव है। जहाँ देव शास्त्र गुरुकी उपासनामें कुछ शान्ति प्रतीत होती है वहाँ दो बातें हैं (१) अशान्तिकी मंदता, (२) आंशिक शान्ति। सो जो अशान्तिकी मन्दता है, उसका तो निमित्तकारण देव शास्त्र गुरुकी उपासना है और जो आंशिक शान्ति है उसका कारण निज सहज स्वरूपकी दृष्टि, प्रतीति, आश्रय या अवलम्बन है।

यह पूर्ण सत्य है कि निज सहज स्वभावका आश्रय लिये बिना शान्ति हो नहीं सकती। दुःखोंकी कमी रूप शान्तिका तो मूल्य ही क्या है? उससे क्या लाभ हो सकता? वह तो केवल थोड़े क्षणोंका कल्पनाजनित सुख है?

प्रिय आत्मन् ! आत्मस्वरूपसे ही प्रेम कर। पञ्च इन्द्रियोके विषयोके भोगका परिणाम अपने आपको वलहीन बना देना है। जिन जिन ऋषियोके सम्बन्धमे ऋद्धिके चमत्कार सुने गये है वे सव विषय विमुखता और स्वसुमुखता के ही फल हे।

इन्द्रियविरक्तिसे आत्माकी वलिष्टता वनती है। इन्द्रियासक्तिसे आत्माकी निर्वलता होती एव बढती है। हे आत्मन् ! वलवान वनो जिससे परमनिराकुलताका अनुभव कर सको। निज सहज स्वभावका उपयोग करना ही सत्य वलका विकास अथवा प्रयोग हे। प्रभजामि शिव चिदिद सहजम्।

३० मई १९६०

पराधीनता कभी भी शान्तिका कारण नही हो सकती। परमार्थमे तो शान्तिका कारण पराधीनता है ही नही, लोकमे भी पराधीनता अशान्तिका कारण है। स्वाधीनताका अर्थ है केवल स्वकी आधीनता, अथवा किसीकी भी आधीनता न रहना। आत्मा निश्चयसे किसी भी परद्रव्यके आधीन नही है, आत्मा ही क्या, कोई भी द्रव्य किसी भी अन्य द्रव्यके आधीन नही है। आत्मा एक उपयोक्ता पदार्थ है सो वह अन्य द्रव्यका लक्ष्य करके इष्ट अनिष्ट कल्पना करता है, इसीसे पराधीनताकी वृत्ति आत्मामे प्रकट होती है। यदि यह आत्मा सत्य ज्ञानके वलसे किसी भी परद्रव्यसे अपनी परिणति न मान कर केवल ज्ञाता द्रष्टा रहे सो वहाँ भी परिणमन तो कुछ न कुछ होगा ही, सो वह परिणमन किसी अन्य द्रव्यके आधारसे तो उत्पन्न हुआ ही नही और हुआ है खुदकी ही शक्तिका परिणमन, अत वहाँ स्वकी ही आधीनता रही, लो, वस, इसी कारणसे वह स्थिति स्वाधीनताकी स्थिति कहलाई। वस्तुत अधीनता तो विषमता व वुद्धि पूर्वकताकी वृत्तिमे कहलाती हे, सो विषमताकी व वुद्धिपूर्वकताकी वृत्ति ही क्या, आत्मा है और परिणमता ह, परदृष्टिके अभावमे ज्ञाता दृष्टारूप परिणम जाता है। इसमे आधीनताकी क्या वात ? किसी अन्यके आधीन न रहनेका नाम ही स्वाधीनता, स्वतन्त्रता है।

हे स्वतन्त्र निश्चल निष्काम। ज्ञाता द्रष्टा आतमराम ॥

३१ मई १९६०

ससार एक विचित्र गहन वन है। इसमे विषयरूपी विष-वृक्षोके सुन्दर फल लटकते हुए मिलते हैं। क्रोधरूपी प्रेत राक्षसोका यत्र-तत्र विचरण होता रहता है। जगह-जगह अहङ्काररूपी विषधर विचरते रहते हैं। माया पिशाचिनीका तो बेरोक-टोक विचरण बना रहता है। लोभ लुटेरोका तो प्रमुख आवास यहाँ है ही। इस दुस्तर वनसे निकल कर आनन्द निज सदनमे पहुच कर सत्य विश्राम करना बडे ही विवेकी सुभटोका काम है।

यह मनुष्यभव अति दुलभ जन्म है। ऐसे श्रेष्ठ मन, कुल, धर्मको पाकर यदि प्रगतिशील भाव बना लिये जाये तो प्यारे ! सत्य समझ, सदाके लिये सत्य शान्ति पाकर निर्मल, स्वच्छ बने रहोगे।

इस जगतमे किसीका अन्य कोई शरण नही है। यह वस्तु स्वरूपकी सीमाकी बात है। इस बातसे ग्लानि नही करना चाहिये, किन्तु इस वस्तु स्थितिसे शिक्षा ही ग्रहण करना चाहिये। वस्तु स्वरूपकी स्वतन्त्रता समझकर अपनी स्वतन्त्रता समझते हुए परसे उपेक्षित और निजके सन्मुख ही रहना चाहिये। प्रिय आत्मन् ! क्या विपदा अनुभव कर रहे हो। विपदा पर या परभावका मोहमात्र ही तो है। सब पर व परभावोसे विमुक्त होकर एक निज सहज ज्ञायकस्वरूपका अनुभव करो। इसमे विपदाका लेश भी नही है।

१ जून १९६०

निष्कामता आत्माकी सर्वोपरि विभूति है। इस विभूतिके पा लेने पर दरिद्रताका, हीनताका नाम भी नही रहता। निष्कामता ही परमश्री है। इस परमश्रीसे विहीन पुरुषोके पास जडश्री आकर दरिद्रताका दुख देती है। योगीजन इस मर्मसे पूर्ण विज्ञ होते हैं। अत वे जडश्रीका मोह त्याग कर परमश्रीकी अभेद परिणतिरूप अभेद उपासनामे रत रहते है। ॐ नम परमश्रीकान्ताय।

हे आत्मन् ! भावका ही तो ससार है, भावका ही मोक्ष है, भावका ही

मोक्षमार्ग है, भावका ही पुरुषार्थ करना है। ऐसा सुगम इलाज भी तुझसे न किया जाय तो बता फिर कैसे नीरोगता प्राप्त करेगा? वास्तविक स्वास्थ्य कैसे पावेगा?

ओह! इस अशरण संसारमे कौन किसका सहाय हो सकता है, कोई नही। तब तो समस्त परपदार्थोंकी ओरसे पूर्णतया उपेक्षित हो जावो। सभी पर पर ही है, उनसे मुझे क्या? सभी परपदार्थोंका राग न रहे तो अन्तरमे अवश्य सर्वस्व मिलेगा। मन व इन्द्रियोका कोई दोष नही होता, यह आत्मा ही अज्ञानके कारण कषायादि परिणमनोमे स्वबुद्धि करके अपराधी बन रहा है। प्रिय आत्मन्! भावका ही तो सब कर्तव्य करना है, उसमे प्रमाद क्यो? अपने आपको देखो सहज चैतन्यस्वरूप और यही देखते रहो, सर्वसकट दूर हो जावेगे।

२ जून १९६०

हम देखते तो ये सब है परन्तु उन्हे देखनेकी पद्धति ऐसी बनाई है जिससे आकुलता ही हस्तगत होती है। हम देखते है इन सबको इस विश्वास व उपयोगके साथ कि ये सब सत्य है और ये मेरा है, ये इनका है इत्यादि। इस प्रकार देखनेमे क्लेश ही हाथ लगता है क्योकि यह जानकारी उनके स्वरूपके विरुद्ध है। ये दृश्यमान ये पदार्थ सत्य नही हैं, क्योकि सत्य वह है जो सत्मे शाश्वत हो अथवा जबसे वह सत् है, जब तक वह सत् है सदा उसमे जो रहे वह सत्य है। ये दृश्यमान सब असत्य है, क्योकि सत्मे शाश्वत यह नही, अनन्त परमाणुओका पुञ्ज है। अभी मिला है, बिखर जायगा, यह फिर न रहेगा, सद्भूत परमाणु तो रहेगे। जो अनाद्यनन्त सत् है उसका ध्रुव स्वभाव सत्य है। जो ध्रुव है वह अभेद विवक्षामे सत् है और भेद विवक्षामे सत्य है। सत् और सत्य भिन्न पदार्थ नही। इन दृश्यमानोको देखते ही यदि यह बोध हो जावे कि यह सब शकल तो माया है, असत्य है, इनमे परमाणु परमाणु सत् है सत्य है। इस सत्यताकी ओर दृष्टि हो तो मोह कहासे उत्पन्न हो। अब चेतन पदार्थोकी ओरका निर्णय करो— चेतन पदा र्थ यहा किसी न किसी

शरीरकी शकलमे देखे जाते हैं। चेतनको कोई चेतनके रूपमे देखता नही। यदि कोई चेननके स्वरूपसे चेतनको देख ले तो फिर उसके मोह नही रह सकता। दिखनेमे आता जो प्राणी वह सत्य नही है, वह तो एक चेतन व अनन्त अचेतन पदार्थोंका पिण्ड है, असमानजातीय द्रव्य पर्याय है। इसको देखकर यदि कोई सत्यभूत चैतन्य और परमाणुओको समझे तो उसके मोह नही रह सकता।

३ जून १९६०

उपयोगरूपी शान पर अन्तर्ध्वनिरूपी सुवर्णको कसना व घिसना ही आत्म-निर्मलताका उपाय है। यह जीव अन्तर्ध्वनिकी अवहेलना करके सस्कारसे प्रीति करता है इसके फलमे इसके हाथ अशान्ति ही रह जाती है। सस्कारोकी प्रेरणा से जिन कार्योंके करनेका भाव व यत्न हो रहा हो उन कार्योंको न करनेका ही आग्रह हो और इसके परिणाम स्वरूप उन कार्योंसे बच जाय यही अन्त-र्ध्वनिके विजयकी पहिचान है।

हे आत्मन्! कामवासना, क्रोध, मान, माया व लोभका भाव करनेसे पुण्य क्षीण होता है, फिर पुण्य तो रहा नही और उदय आवेगा पाप का, तब तो सकट ही सकट रहेगा। इस लिये प्रिय आत्मन्! कैसा ही सुन्दर रूप सन्मुख आवे- तुम तो उसे हाड, माम व चाम ही निरखो और कामवासनाको पाप, सकट व दुर्गतिका हेतु जानकर उससे दूर होनेके लिये निज शुद्ध चैतन्य स्वभावका उपयोग करो। कैसा ही क्रोध प्रसङ्ग आवे क्रोधको पुण्य क्षयकारी समझकर क्रोध न करो। शान्ति ही वर्तो, जिस नुकसानको देखकर क्रोध करना चाहते हो, क्रोध करनेसे उससे कई गुणा नुकसान हो जायगा व दुर्गतिमे भटकोगे वह अलग। मान करनेसे भी पुण्यक्षय होता व पाप सामने आवेगा, तब तेरी कोई पूछ नही होगी व दुर्दशा होगी वह अलग। माया जिस लाभ के लिये करते हो वह लाभ न होगा प्रत्युत कई गुणी हानि होगी। यदि लाभ भी हुआ तो वह प्रवल पुण्यके उदयसे हुआ, माया व्यर्थ ही की, अव उस माया के फलमे कई गुणी हानि होगी, ऐसा जानकर माया बिलकुल भी मत कर, चाहे वर्तमानमे कितनी भी हानि दिख रही हो। जितना लोभ करेगा उससे

कई गुणा तेरा नुकसान हो जायेगा। लोभ न करनेसे घाटा कुछ नहीं होगा, प्रत्युत पुण्यकी वृद्धिसे लाभ ही विशेष होगा।

४ जून १९६०

अब धर्मके रिश्तेसे भी किसका विश्वास किया जाय आज, मुझे प० प्रेमचन्दजीके समाचारसे एक ऐसा विषाद हुआ जो मुझे शोकमग्न कर गया। ये पहिले क्षुल्लक वेशमे प्रेमसागरजीके नामसे थे। इन्होने बीमारीवश क्षुल्लक वेश छोड दिया। ये जगाधरीमे आये और कहांसे आये ? पूछने पर जवाब दिया–अम्बालासे आये और बोले कि हमको दमाकी बीमारी हो गई थी जिससे कई बार दवाई खानेके लिये क्षुल्लकवेश छोडना पडा और अब मैं नौकरी चाहता हूँ। जगाधरीके एक प्रमुख भाई जयप्रसादजीने भी सलाह दी कि लगा देना चाहिये नौकरी, अन्यथा ये और गिर जायेंगे। हमने मंदिर जी, शास्त्रमाला, धर्मशिक्षा सदन व अहिंसा प्रेस चार संस्थाओके प्रबन्धक को चिट्ठी लिख दी, थोडे-थोडे समयकी टयूशनके लिये कि यदि आप कार्य कराना चाहे तो नियुक्त करले याने दो या तीन स्थानोसे इन्हे ८०) मिल जावें। ये २२ मईको मेरठ पहुचे। इन्होने कोशिश की किन्तु सफलता नहीं मिली। फिर ये २६ मईको रुडकी आये, फिर मुझसे चिट्ठी लिखवा ली प्रेस वालोको ४५) के बजाय ५०) के लिये, शास्त्रमाला वालोको ३५) के बजाय ४०) के लिये, मंदिर वालोको ५०) के लिये किसी दो जगह काम करनेके लिये। ये मेरठ गये शास्त्रमालामे २७ मईको नियुक्ति मिल गई होगी। फिर २९ मईको बिना कहे, बिना चार्ज दिये मेरठसे भाग गये और करीब २७) भी ले भागे व रोकडमे लिखे गये कि २१ ता० से २९ ता० तकका वेतन ले लिया। सोचा तो यह था सब ने कि जो क्षुल्लक रह चुका है वह इतना गिरा हुआ नहीं हो सकता, किन्तु दिखा यह कि जो बडे पदमे भ्रष्ट होगा वह करीब सभी आचार, विचार व न्यायसे गिर जाता है। मुझसे यह कह कर लिखाया कि मुझमे कोई धोका न होगा और यदि छोडेगे तो १ माह पहिलेसे आपकी सलाह लेकर छोडेंगे और फिर यह धोका। इससे मुझे विषाद रहा और चित्त यह बना कि धार्मिकोका भी

कैसे विश्वास किया जाय ? इन्हे २०) का सामान व रकम भी जगाधरीसे दिला दी थी। अम्बालामे ज्ञात हुआ कि ये अम्बाला थे ही नही, झूठ बोले।

५ जून १९६०

आत्माके साथ कपट मत करो। अपने आत्माका कल्याण करना है, सो इस योग्य परिणाम करना ही कर्तव्य है। जिन्होने किया उनकी मूर्ति तक भी भी पुजती है।

प्रियतम! तुम परिपूर्ण हो, ज्ञानमय हो, आनन्दमय हो। सोच की, विचार की, चिन्ता की, कहनेकी, सुननेकी, माननेकी तो कोई बात ही नही है। यहाँ तो सब बढिया मामला तैयार है। अपने घर आवो, अपनेमे मग्न हो जावो।

हे अहिततम्! तुम क्षणिक हो, जड हो, दुःखरूप हो। तुमसे नेह करने का तो कुछ भी धर्म है नही। तुम्हारा तो ख्याल, लगाव, प्रवर्तन सब कुछ विपत्ति ही विपत्ति है। तुम स्वय तो कुछ भी हो ही नही। जाओ, हट जाओ, मिट जावो। हे अनादिके चले आये प्यारे! तुम्हारे मिटनेमे तुम्हारा कुछ बिगाड नही, बल्कि तुम पराधीनताके बन्धनसे दूर हो जावोगे।

६ जून १९६०

देखी, कोई लोककी कला। देखी कोई आपकी बला॥
खलोमे आला खुदका नाला। पडा है जिससे पूरा पाला॥
फिर भी उसको गले लगाया। इसीको समझा अपनी माया॥

रे स्वय! तुझे यहाँ कोई जानता ही नही है, तू 'मुझे लोग जानते हैं, पहिचानते है, ऐसा भ्रम करके विकल्पोकी चक्कीमे पिसा जा रहा है। तू एक सत् है, आकाशवत् अमूर्त निर्लेप है, प्रतिभास स्वरूप है, इस तेरेको कोई नही जानता। हाँ कोई ज्ञानी प्रतिभास स्वरूपको पहिचानते है, पहिचाने, वहाँ भी तू पहिचाना न गया। तुझे कोई जानता ही नही, व्यर्थ क्यो हाथ पैर पीटता है। अरे हाथ पैर भी तेरे नही, तू तो उपयोगको पीटता है। ॐ शुद्ध चित्। ॐ तत् सत्, ॐ शुद्धं चिदस्मि।

७ जून १९६०

(१) चित्स्वभाव, (२) ज्ञायकभाव,
(३) समयसार, (४) परमपारिणामिकभाव,
(५) जीवत्वभाव, (६) शाश्वत उपादान,
(७) कारणसमयसार, (८) शक्तिस्वरूप,
(९) स्वभवन, (१०) स्वपरिणमन,
(११) अर्थपर्याय, (१२) स्वभावगुणव्यञ्जनपर्याय,
(१३) स्वभावद्रव्यव्यञ्जनपर्याय, (१४) विभावसम्यग्ज्ञानपरिणमन,
(१५) विभाव असम्यग्ज्ञानपरिणमन, (१६) अव्यक्तविकारपरिणमन,
(१७) सुखानुभवपरिणमन, (१८) दुःखानुभवपरिणमन,
(१९) व्यक्तविकारपरिणमन, (२०) मिश्रश्रद्धापरिणमन,
(२१) अप्रतिबुद्ध अभिगृहीतश्रद्धापरिणमन,
(२२) अप्रतिबुद्ध अनभिगृहीतश्रद्धापरिणमन,
(२३) अशुद्धद्रव्यव्यञ्जनपर्याय।

इनमें ऊपरसे नीचेकी बातें याने पूर्वसे उत्तरकी बातें स्थूल स्थूल हैं।

८ जून १९६०

(१) पूर्वविकार (३) आस्रवण,
(२) वर्तमान विकार (पुद्गलपरिणामभाव), (२) निमितत्व,
(३) पुद्गलकर्म द्रव्य, (१) निमित्त।

(१) पूर्व विकारसे हुआ (२) वर्तमान विकार
वर्तमान विकारसे हुआ (३) ज्ञानावरणादि कर्म।

अतः

ज्ञानावरणादिके आस्रवके निमित्त (वर्तमान विकार) का निमित्त पूर्वविकार (राग, द्वेष) है। अतः पूर्वविकार वास्तवमें आस्रव है।

९ जून १९६०

१. पूर्वविकारसे
२ वर्तमान विकार
पूर्वविकारमे (इसमे विशेषता नही)
वर्तमान विकार (पुद्गल निमित्तक जीव परिणाम) इसके निमित्तसे।
३ ज्ञानावराणादिवध ।

× × × ×

अथवा

१ ज्ञानावरणादिके वधका कारण है द्रव्यप्रत्यय [उदयागत कर्म २ द्रव्यप्रत्ययमे वधकी कारणताका कारण है भावप्रत्यय (वर्तमान राग, द्वेष मोह, भाव), ३ भावप्रत्ययका कारण है अप्रतिबुद्धता ।

अथवा

१ कर्मवन्ध, २ द्रव्यप्रत्यय, ३ भावप्रत्यय, ४. द्रव्यप्रत्यय ५ अप्रतिबुद्धता । इन ५ का सम्वन्ध देखो— अप्रतिवुद्धताके कारण द्रव्य प्रत्ययमे भावप्रत्ययकी कारणता आई। भावप्रत्ययके कारण द्रव्यप्रत्ययमे कर्म वन्धकी कारणता आई। भावप्रत्ययके उत्पादका निमित्त द्रव्यप्रत्यय है निमित्तत्वविशिष्ट द्रव्यप्रत्यय कर्मवन्धका साक्षात् कारण है ।

१० जून १९६०

मैं अन्य सबसे पृथक् निज सत्तामात्र हू, प्रतिभासस्वरूप हूँ, इससे वाहर मेरी कोई करतूत नही, वाहरमे इसमें कुछ भी आता नही, ऐसी चतुरङ्गी भेद भावनाके बलसे सहज दर्शनमे आये हुए चैतन्य प्रभो । जयवत होओ ।

आनन्द तो अपने आपमे है, वाहर तो भ्रमणजाल है । अहो, अहो, मेरे उपयोगमे परमाणुमात्र भी कोई पदार्थ [परपदार्थ] मत आओ । ऐसी स्थिति मे मरण हो जाओ, कही जावो, कुछ बनो, कुछ फिकर नही है । वस, केवल हे निज आतमदेव ! तुम सदा मेरे उपयोगमे वसो ।

ॐ शुद्ध चिदस्मि, ॐ शुद्ध चिदस्मि, ॐ शुद्ध चिदस्मि ।

११ जून १९६०

कुछ नही करना, किसके लिये करना ? कुछ वाहर कर ही नही मकता, किसी अन्यके लिये कुछ कर हो नही मकता। हे उपयोग ! अपनी ही सत्ता तक रह ? यदि समस्त विश्व भी जाननेमे सहज आता है तो आवो, किन्तु आत्मतत्त्व के प्रत्ययसे भ्रष्ट होकर अन्य कुछ भी जानो उसमे तेरा हित नही हे।

अरे प्रियतम ! वास्तवमे अन्य पदार्थको तो तू जान भी नही सकता तो करनेकी बात ही कहा लगे। वात तो ऐसी है, किन्तु तेरी यह उद्दण्डता क्यो समाप्त नही होती ? जब चाहे जिस किसी पुद्गलका विकल्प करने लगते। यह भी किया करते हो स्पर्श- रम, गन्ध, वर्ण, शब्द व कीर्तिके विषयवश। हे अपने ! ये सब क्षणिक हैं सो छोड इनके सपने। अब हे मनमाने ! ये सब पर है, तेरी इच्छा माफिक नही रह सकते, सो मत वन अनजाने।

ॐ शुद्ध चिदस्मि।

१२ जून १९६०

बता वेटा ! किसे खुश करना है, कितनोको खुश करना है, दो को, चार को ? अच्छा कर लो खुश जितने चाहो, सौको हजारको। खुश कैसे करोगे ? जेसे उनका बढप्पन उनकी समझमे आवे ऐसो ही कोई बात करके, जैसा कुछ वे चाहते है वैसी ही बात करके, धर्मकी वात तो प्रिय होती ही है सो धर्मकी वात पेश करके। अच्छा कर लो खुश दुनियाको, कर लो परिश्रम दिल भरके, परन्तु सुनो, जब किसीके बढप्पनमे कोई ठेस पहुचेगी तो तुम्हे घीमे की मक्खी की तरह निकाल फेंक दिया जावेगा और लाख वातकी वात तो यह है कि चाहे दुनिया भर भी तुमपर खुश हो जाये तो भी उनमे से किसीके कारण भी तुममे कुछ आ नही सकता, केवल विकल्प कर करके दुःखी ही वने रहोगे और देखो जिन्हे खुश करना चाहते हो, न वे रहनेके और न ये तुम रहनेके और भी देखो कोई भी तुम पर खुश हो ही नही सकता, जो कोई खुश होता है सो खुदकी ही परिणतिपर खुश होता है और भी देखो तुम खुश क्यो करना चाहते हो ? इस लिये कि तेरा भी कुछ बढप्पन लोगोको जाहिर हो। सो अरे यार,

क्यों बेकार रार बढाता है, तेरा न कोई नाम है न शकल मूरत और है मात्र चैतन्यस्वभाव। क्या गजब ढा दिया विकल्प तरङ्गोंने ? सब ओरसे उपयोग हट कर और सहज जैसा वर्तनेमे आवे सो वर्तो। ॐ, ॐ, ॐ, ॐ, ॐ, ॐ, ॐ,

१३ जून १९६०

विशुद्धज्ञान दर्शन स्वभावमय निज आत्मतत्त्वके श्रद्धान ज्ञान आचरणरूप अभेदरत्नत्रय परमसमाधि है अर्थात् जिस स्थितिमे प्रतिभास स्वरूप स्वां उपयोगका अत्यन्त निर्विकल्प रूपमे एकत्व है वह स्थिति परमसमाधि है और बुद्धिपूर्वक रागादि रहित रूपमे उपयोगका एकत्व है वह समाधि है। समाधिका अपरनाम स्वानुभूति है। स्वानुभूतिमे अनुभव स्वका ही होता है रागादिभावका नही होता। यद्यपि चतुर्थ गुणस्थानमे अप्रत्याख्यानावरण रागादि है और स्वानुभूति भी है, किन्तु जब स्वानुभूति है तब रागादि होते हुए भी उसका अनुभव नही है, रागादि वहाँ अबुद्धिपूर्वक टहले है, लेकिन उन्हे उपयोग ग्रहण नही करता।

अहो परमपिता स्वानुभव! तुम्हारी छत्रच्छाया ससारके दु खको अवश्य हर लेती है दूर कर देती है।

१४ जून १९६०

रागादि तरङ्ग निरन्तर उठ रही है अभी। चैन नही मिल रही है। उपयोगका जोर विविक्त सनातन शुद्ध आत्मतत्त्वपर लगाता हू। कभी कुछ उस ओर जाता है। जाते जाते रागादिका आक्रमण भूमिकामे हो जाता है, उपयोग वापिस हो जाता है, किन्तु कोशिश करनेकी गाद बनी रहती है। यह अन्तर्द्वन्द्व निर्द्वन्द्व हुए बिना नही मिट सकता। निर्द्वन्द्वता इतनी चाहिये कि चर्या परमहस जैसी हो जाय। ज्ञानमय भाव होनेपर अविवेक तो होगा ही नही, किन्तु परम समता आवे ऐसी चर्या बने तब अन्तर्द्वन्द्व समाप्त हो।

हे मुमुक्षो! क्या ऐसा बल लगाया नही जा सकता ? लगाया तो जा सकता है मगर । अच्छा तो सुन, मगरका भी एक इलाज सुन—एक बार तो कडा साहस करके ऐसी बाह्य स्थितिमे तो पहुँच, जिसमे तू एक प्रकारका विवश

हो जाय अति दूर एक दो के ही सत्सङ्ग सहित किसी वनस्थलीमे पहुँच। सत्सङ्ग ध्यान प्रेमीका होना चाहिये।

१५ जून १९६०

सबसे विकट रोग तो यह है कि यह समझ रखा है कि लोग मुझे जानते है। लोग जानते है नही मुझे, किन्तु दिमाग ऐसा ही घसड फसड बना रहा है। देख—क्या तू चैतन्य स्वभावमात्र है उस तू को जानता ही कौन है और, जो जानता है उसके लिये एक द्रव्य सामान्य है। तू थोडे ही है, इस तेरेका कोई नाम ही नही। अपने निर्नाम अमूर्त शुद्ध चैतन्यस्वभावमय परमात्मदेवकी भक्ति कर। जगत्मे जो होता है उसके विकल्पसे तो पूरा कभी भी नही पडेगा।

ओ दिव्यतेजोमय, अब तो ज्योतिर्लीन हो। देख सुखी होना है, शान्त होना है तुम्हे! हा, तो बस, साहस कर, परद्रव्य तो पर ही हैं, अब भी अलग हैं, वियोग होनेपर लोक साधारणकी दृष्टिमे भी अलग है उनका उपयोग छोड विकल्प छोड। हिम्मत कर और कर तो पूरी हिम्मत कर। पूज्यपाद का आदेश मान—"सर्वेन्द्रियाणि सयम्य स्तिमितेनान्तरात्मना। यत्क्षण पश्यतो भाति तत्तत्त्व परमात्मन"।

ॐ निर्नाम शुद्ध चिदस्मि।

१६ जून १९६०

(१) ससारका कारण शरीर है, शरीरका अभाव होनेपर ससारका अभाव होता है। (२) शरीरका कारण कर्म है, कर्मका अभाव होनेपर शरीरका अभाव होता है। (३) कर्मका कारण आस्रवभाव (राग, द्वेष, मोह) है, आस्रव भावका अभाव होनेपर कर्मका अभाव हो जाता है। (४) अध्यवसान (मिथ्यात्व, अज्ञान, अविरति व योग) आस्रवभावका कारण है, अध्यवसानका अभाव होने पर आस्रवभावका अभाव हो जाता है। (५) आत्मतत्त्व व अनात्मतत्त्वमे एकत्वका आशय हो जाना अध्यवसानका कारण है, आत्मतत्त्व व अनात्मतत्त्वमे एकत्वका आशय न रहे तो अध्यवसान भी नही रह सकता।

उक्त बातोका मर्म समझकर वह उपाय करना चाहिये जिसस समार

(क्लेश) का सर्वथा अभाव हो जावे। वह उपाय व प्रारम्भिक उपाय है वस्तु-स्वरूपका सम्यक् परिज्ञान करना।

१७ जून १९६०

इच्छा करके हो या इच्छा विना हो, सारे ही विभाव औपाधिक भाव है। वे होते है उन्हे औपाधिक तो जानो अपना स्वरूप तो न समझो। यदि यह विवेक कर सकते हो तो मनुष्य होना ठीक है अन्यथा मनुष्य रहो या पशु वनो जो चाहे रहो सव एक वरावर है।

अरे प्रियतम! अपने आपपर कुछ तो दया करो, अपनी दया यह है कि सवसे न्यारा शुद्ध चैतन्यमात्र अपनी प्रतीति करो।

१८ जून १९६०

किसीके घर वालकका जन्म होता है, वहाँ खुशी होती है, वाजे वजते है। वहुतसे लोग तो यह मानते है कि "वच्चा पैदा होनेकी खुशी मनाई जारही है, ऐसा सोचनेमे अन्य लोगोको कुछ उत्साह नही होता। हो, यदि ऐसा सोचा जाय कि ससारी प्राणियोमे से एक जीव मोक्षमार्गका पात्र वननेके लिये प्राप्तावसर हुआ है, ससारके समस्त क्लेश छेदनेके लिये अवतरित हुआ है" तो ऐसा सोचनेमे अन्य लोगोको भी उत्साह हो जायगा। कारण यह है कि धर्मका नाता व्यापक होता है, कुटुम्वका नाता एक दो से ही सम्वन्धित होता है।

अहो वह आत्मा धन्य है जो ससारके अन्य योनियोको पार कर मनुष्यभव मे आता है और आत्मतत्त्वका अवलम्वन लेकर ससारके समस्त क्लेशोको दूर कर देता है।

१९ जून १९६०

हे परमात्मदेव! तेरी महिमा यही है कि तू केवल है, मात्र खुद है, इसी कारण सव अतिशय तेरे प्रकट होगये है। मुझे अतिशयोकी वाञ्छा नहीं, मेरे मन तो यही भाया है कि केवल ही रहनेपर निर्मलता है, केवल ही रहनेपर सर्वक्लेशोसे मुक्ति है। नाथ! मैं भी केवल ही हूँ, किन्तु अनादि अज्ञानवश केवल रूपमे अपना प्रत्यय न करके सयोगमे अनात्मभावमे अपनी प्रतीतिकी

हैं और इसी कारण ससार रूप महाविपदा साथ लगी है। हे देव सर्वसार यही है कि केवल रहना। मुझे अन्य कुछ नही चाहिये। मै केवल ही रहूँ, सिर्फ यही अभिलाषा है। ॐ शुद्ध चिदस्मि !

२० जून १९६०

हे स्वय ! तेरेमे बाहरसे कुछ नही आता, कुछ आ ही नही सकता। वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है कि प्रत्येक वस्तु परिपूर्ण सत् है। तेरेमे जो कुछ हो रहा वह तेरेसे ही हो रहा है, तेरा जो कुछ बन रहा है वह तेरेसे ही बन रहा है। हा, यह बात एक अलग है कि तू विभावरूप परिणमनेकी योग्यतावाला जब तक है तब तक तू बाह्य निमित्त व उपाधिको आश्रय करके ऐसा परिणम जाता है। वहाँ भी सब कुछ परिणमन तेरी शक्तिसे उठा हुआ हैं। अपनेको शक्तिमात्र देख तो ये निमित्तनैमित्तिक व्यवस्था बदल जायगी, तू सहज आनन्दमय हो जावेगा। ॐ शुद्ध चिदस्मि।

२१ जून १९६०

किसीका अन्य कोई कुछ भी नही हो सकता। यह प्रसन्नताकी बात है, क्योकि इसी कारण तो सबकी रक्षा हुई है और होगी। यदि किसीका अन्य कोई कुछ हो जाता है तो यह भी और वह भी सब मिट जाता है।

सब खुदगर्ज है, यह प्रसन्नताकी बात है, क्योकि इसी कारण वस्तु व्यवस्थित अवस्थित है। यदि कोई किसी अन्यका कुछ कर देता तो सब व्यवस्था समाप्त हो जाती और फिर वस्तु ही समाप्त हो जाती।

केवल समझका ही फेर है, हो तो रहा सब न्याय। न्यायका उलङ्घन कही नही हो रहा। कैसी योग्यता वाला, कैसे शक्तिशाली पदार्थको निमित्त पाकर या निरपेक्ष होकर किस रूप परिणम सकता है, इसी कानूनके आधार पर यह सब लोक परिणमन हो रहा है।

आत्मन् ! तुम ज्ञानस्वरूप हो, जानना, देखना तुम्हारा काम है, तुम जानने, देखने वाले बनो। जानते रहो, देखते रहो और कुछ अटकी भी क्या है ?

२२ जून १९६०

हे निज प्रभो ! अब तो प्रसन्न होओ, निर्मल होओ। विकार भावका आदर करके ही यह प्राणी ससारी तथा अनेक यातनाओंका पात्र बन रहा है। एक विकारकी रुचि छोड तो सर्वसिद्धि है। हे परमानन्दरस निर्भर ! क्या हैरानी है ? विपरीत बुद्धि करके दु खी होते हो तो इसका इलाज ही क्या है ? इलाज तेरे पास है, इलाज करने वाला भी तू है, रोगी भी तू है। अरे प्रिय ! अपनी असलियत तो देख, तू एक चेतन द्रव्य है, द्रव्यत्वके नाते तुझमे व परमात्मामे क्या भेद है ? कुछ नही। स्वरूपको देख, परमात्माका यहा वास मिलेगा और इसी उपायसे परमात्मा प्रकट हो जायगा।

वाह रे सम्यग्ज्ञान ! तू सारी ही तो आकुलताये मिटा देता है। इस सम्यग्ज्ञान प्रभुकी जितनी उपासना की जाय उतना ही विशेष फल तुरन्त ही मिल जाता है। जिन पर सम्यग्ज्ञान प्रभुकी प्रसन्नता नही हुई वे वेचारे दारिद्रयका ही क्लेश भोगते रहते है।

अहो सत्सङ्ग ! जो भी बीच-बीचमे शिथिलताये आती है तेरी कृपासे वे सब क्षणभरमे ध्वस्त हो जाती हैं।

अहो गुरुवाणी ! तेरी सेवा जो कर लेता है, वह अनन्त दु खोका विनाश लीलामात्रमे कर डालता है।

स्वाध्याय व सत्सङ्ग इन दोसे अलग मत रह, कल्याण होगा।

२३ जून १९६०

हे आत्मन् ! तेरा तू ही साथी है, तू ही शरण है। जगतकी, अर्थात् लोककी प्राकृतिकता याने निमित्त नैमित्तिक भाव अनिवार्य है। तेरे परिणाम मलिन होगे तो कर्मबन्ध होना प्राकृतिक बात है। उन कर्मोका उदयकाल आने पर भावोमे हीनता होना प्राकृतिक बात है। देख, यह सब होने पर भी कोई द्रव्य किसी अन्य द्रव्यका कुछ परिणमन नही करता। तब हे प्रिय ! कुछ भी बीतो, यदि इस निश्चयनयका ग्रहण भी कर लो कि प्रत्येक है और परिणमता है,

परिणमता है स्वयमे परिणमता है, उसका फल स्वय है, उसकी शक्ति स्वय है, उसका आधार स्वय है। इस प्रतीतिमे तो रह।

अब रही सही जिन्दगीको तपमे लगा। शरीर तो कृश होगा ही, तब तप के निमित्तमे कृश हो तो इसमे कौनसी हानि है? अपना समय चर्चामे कम लगा, उससे अधिक प्रवचनमे लगा, उससे अधिक समय लेखनमे लगा, उससे अधिक समय स्वाध्यायमे लगा, उससे अधिक समय ध्यान सामायिक जापादिमे लगा। इसका अनुमानित समय इस प्रकार हो—

पौना घण्टा चर्चामे, कुल पौन घण्टा प्रवचनमे, २ घण्टा लेखनमे, ५। घण्टा सामायिक ध्यानादिमे, ३॥ घण्टा स्वाध्यायमे।

जैसे आजकलके टाइममे, चर्चा ४ से ४॥ दिन, सुबह ७ से ७॥ प्रवचन, दुपहर १२-४५ से २॥ लेखन, तीनो सध्यामे १॥-१॥ घण्टा सामायिक, सामायिकके बाद ॥ घण्टा पाठ स्वाध्याय, प्रात ८ से ६॥ स्वाध्याय, १०। से ११ स्वाध्याय, ३ से ३॥ स्वाध्याय, ५ से ५॥ स्वाध्याय।

२४ जून १९६०

दुनियाँमे बाधायें कोई चीज नही, कारण कि परपदार्थकी किसी भी परिस्थितिसे आत्माको तो बाधा पहुचती नही, और आत्मा स्वय बाधाके स्वभाव का है नही, फिर बाधा ही क्या? हे आत्मन्! कल्पनाका विस्तार बन्द कर, देख सुखी हो जायगा। परकी किसी स्थितिके चाहमे क्या सार है? प्रत्युत उपद्रव ही उपद्रव है। शान्तिमय निज स्वभावकी ओर झुक। यहाँ ही परमशान्ति है।

जैसा पद पाया है उसे तो देख कितने अमूल्य अवसरकी बात है। विषयो के भावसे आनन्दकी पूर्ति नही, किन्तु आशाके अभावसे आनन्दकी प्राप्ति है। सुखी होना चाहता है तो सभी आशाओका एक साथ परिहार कर। देख— यह तो जीवकी बात है कि वह शान्तिके लिये जो कुछ कर सकता है वह सब कुछ कर डालता है। तेरे आधीन ही एक अनुपम बात है उसे तो और कर डाल। सर्व परचिन्ताओको दूर कर सहज आनन्दमय निज तत्त्वकी दृष्टि

कर लें। अरे भैया! निज दृष्टिके लिये परिश्रम भी क्या करना है, व्यर्थका परिश्रम छोड़कर विश्राममें रहना है। स्वतः आनन्द, अपना विश्राम भी तुझे पसन्द नहीं है क्या?

हे मन! तू जड़ है तो तेरा संग भी मुझे जड़ बनाये दे रहा है। इस उपद्रवसे बचनेका उपाय यह समझमें है कि तू जो-जो इच्छायें रखेगा उनका बहिष्कार किया जाया करेगा।

२५ जून १९६०

द्रव्यदृष्टि करके पदार्थोंके जाननकी दशामें क्षोभ नहीं होता। यह सारा क्षोभभार पर्यायबुद्धिके बोझका है। हे प्रियतम! तुम शान्ति ही तो चाहते हो ना। तो अपने शान्त स्वभावकी शरणमें क्यों नहीं जाते? बाहर ही बाहर डोलनेका फल तो केवल क्लेश ही है। संसार यह सारा असार है। न तो यहाँ परपदार्थोंके संचय संग्रहमें सार है और न अपने किन्हीं परिणमनमें प्रेम करने में सार है। यह सब नाटक हो रहा है उसके ज्ञाता द्रष्टा रहो तो शान्ति मिलेगी। इस नर जीवनका एक-एक क्षण अमूल्य है इसका सदुपयोग करो। सतत् अन्तः प्रकाशमान चैतन्य चमत्कारमय समयसार निज तत्त्वकी सतत् उपासना करो। अन्य किसीकी उपासनासे तुम्हें लाभ कुछ नहीं है। परन्तु क्लेश भी ज्ञानीजन इस ही अन्तः प्रकाशमान चैतन्य महाप्रभुकी भक्तिसे करता है। विषयकषायोंके सेवनका महान् अपराध न हो जाय क्योंकि इस अपराध के कारण मैं चैतन्य महाप्रभुकी उपासनाके लायक न रहूँगा सो मेरे चैतन्य महाप्रभुकी उपासनाकी योग्यता बनी रहे, इस भक्तिके कारण परमभक्तिके अभावमें परसेवाका कार्य कर लेता है। अहो! ज्ञानीकी सारी लीला ज्ञानमय परमप्रभुकी भक्तिसे रहित नहीं है। अहो ज्ञानदेव! सतत् प्रसन्न रहो, तुम्हारी प्रसन्नतासे ही भगवन आनन्द होते हैं। ॐ शुद्ध चिदस्मि।

२६ जून १९६०

प्रभो! देखते ही माया दिखती है, परमतत्त्व नहीं। कभी ऐसा भी समय आवेगा कि परमतत्त्व प्रथम दीखे और यत्न करके माया दीखे। तत्त्व और

माया इन दोनोंका तदात्व तादात्म्य है, अर्थात् वस्तु है और सतत् परिणमती रहती है, यह वस्तुका स्वभाव है किन्तु वस्तुका स्वभाव सदा वही का वही है, और पर्याय प्रतिक्षण आविर्भूत तिरोभूत होती रहती है। फिर भी पर्याय उस वस्तुका उस समयका परिणमन है। वस्तु जिस समय जिस रूपमे परिणमती है वस्तु उस समय उस ही परिणमनमय है। हाँ, तो तत्त्व (स्वभाव) और माया (परिणमन) उस समय तादात्मकरूपसे है। उसमे तत्त्व तो प्रथम दीखे, पश्चात् यत्न करके माया दीखे, यह तो है योगियोकी प्रकृति और माया प्रथम दीखे व तत्त्वके दिखनेकी कठिनाई रहे, यह है व्यासक्त जनोकी कथा।

अहो ! आत्म स्वभाव, तुम ध्रुव, सनातन व स्वतन्त्र हो, तुम्हारी उपासना से पर्याय भी मम सदृश सदाके लिये स्वतन्त्र हो जाती है। जगतमे दुःख अनेक है। उन दुःखोसे बचना है तो मनके दास मत बनो। माना कि मन तुम्हारे साथ है, उदय भी अच्छा है, किन्तु मनकी आधीनता स्वीकार कर लेनेसे सारा मौज बिगड जावेगा। इन्द्रिय व मनको संयत करके स्वयमे परम विश्राम पाने पर परमात्माका तत्त्व व रहस्य अनुभवमे आता है। इसी रहस्यके साथ शान्तिका विलास है। ॐ शुद्ध चिदस्मि।

२७ जून १९६०

हे निज आत्मन् ! तू ज्ञान व आनन्दका पुञ्ज है, ज्ञानानन्दमय है। ज्ञान बाहर खोजना व आनन्द बाहर खोजना यही अज्ञान और क्लेश है। यह अज्ञान और क्लेश मत कर, देख—यही ज्ञान एवं आनन्दका अनुभव करेगा। सहज सत्य अनुभव होना तो तेरी कला है और इसके अतिरिक्त अन्य सब तरंगे कर्मरूपी विषवृक्षके फल हैं। विषफलोको मत भोग।

तेरेसे अन्य कोई भी पदार्थ तुझमे कुछ परिणमन नही कर सकता तब अन्य किसीसे न तेरा हित ही हो सकता, न बिगाड ही हो सकता। अत सब परपदार्थोंको तू अपने लिये व्यर्थ जानकर उनका एकदम विकल्प तो छोड, परम शान्ति पद पावेगा।

तू तो प्रभु ही है, प्रभुताके विरुद्ध काम करनेकी मत सोच। तू तो आनन्दमय है, आनन्दपरिणतिके विरुद्ध काम करनेकी मत सोच। किसी भी परनिंद

से अपने लिये आशा मत कर, किन्तु जब तक सराग अवस्था है, जब तक कमजोरी है तब तक अपनेको ध्येयपथसे च्युत न होनेके उद्देश्यसे परप्रभुओकी सेवामे समय लगा। अपनी सिद्धिके लिये सबप्रकारम सेवामे समय लगा।

हे प्रभो ! तू प्रभु है, समर्थ है, सद्भावनाओका आदर कर तो तेरी विजय होगी। दुर्भावनाओके आदरमे तो आकुलताका ही साधन जुटेगा। अपनी शान्ति अन्यत्र न खोज, अन्यत्र कही है नही वह। सम्यग्ज्ञानकी परम करुणा है कि सम्यग्ज्ञानके प्रसादसे अशान्तिका व्यय होकर शान्तिका आविर्भाव होता है।

२८ जून १९६०

जो कुछ समागम जिसे जो मिला, ठीक है। आत्मा तो सर्वत्र अकेला ही है। इस ही अकेलेमे विकल्प होता, इस ही अकेलेमे अशान्ति होती, इस ही अकेलेमे भ्रम होता, इस ही अकेलेमे सम्यक् प्रकाश होता, इसही अकेलेमे मोक्षमार्ग होता, इस ही अकेलेमे शान्ति होती। जो कुछ इसका होता, इसही अकेलेमे होता। ऐसे एकाकी निजकी सच्ची खबर रखना यही सर्व व्यवसायोमे सर्वोपरि श्रेष्ठ व्यवसाय है, ऐसी भावना जगानेका उद्यम करना चाहिये कल्याणार्थियो को। समय अनादि अनत हैं, प्रत्येक द्रव्यकी (परम्परया) पर्याये अनादि अनन्त है। हम, आप अनादिसे है, अनन्त कालतक रहेगे। किस रूपमे रहनेमे हमारी कृतकृत्यता है, शान्ति है, आनन्द है, इसका निश्चय पूरा पूरा अवश्य कर लेना चाहिये तथा वास्तवमे मैं ध्रुव क्या हूँ इसका निश्चय अवश्य कर लेना चाहिये। ये सब बाते भीतरकी है, गुप्तसी है। अत इनका पुरुषार्थ भीतर होगा, गुप्तसा होगा, यह कर लिया तो सब कुछ कर लिया।

जीवनका समय निकला जा रहा है। बहुत तो यह निकल चुका, अब जो बाकी है अब जो बाकी है वह भी निकलेगा। अब तो एकचित्तसे एक श्रद्धासे यही भावना व प्रयत्न होना चाहिये कि ज्ञानस्वभावकी दृष्टि हो व वस्तुस्वरूपका ज्ञान बढे, विविधज्ञान भी बढे। आत्माका स्वरूप ज्ञान है सो ज्ञानका विकास कर लेना ही वास्तविक लाभ है।

२६ जून १६६०

(१) १७ हाथी को तीन लडकोमे बाँटनेको राजा कहकर मरा था। आधा, दो तिहाई व एक तिहाई। कैसे बाटे ? बुद्धिमानने १ हाथी और मिलाकर बाँट दिया, अपना हाथी भी ले लिया।

(२) दो लडकोको दो पेड दिये जिसमे कच्चे ३० व पके ३० फल निकले। कच्चे वाले दो पैसेमे ३-३, पके वालेके २-२ बिके, सो २५ पैसे हो जाय। मारवाडी ने इकट्ठे टकाके ५ लिये, तब २४ पैसे मिले, एक पैसा कहा गया ? १० बार मारवाडी तो सम्मिलित मिले बादमे टकाके पाच पके बिके।

(३) तीन छात्र आधा टिकट लेकर रेलमे बैठे। टिकटचैकरके आनेपर एक लडका बैंच पर बैठा, दो नीचे बैठे। चैकर को आधा टिकट देकर कहा कि हम एक ऊपर दो नीचे अर्थात् आधा है व टिकट भी आधा है। चैंकर हसकर चल दिया।

३० जून १६६०

मैं अन्य सबसे न्यारा अपनी सत्तामात्र हू। मैं किस रूप हूँ ? यह समझनेकी कोशिश करो। यह मै आँखोसे तो समझा नही जा सकता, आँखोसे तो बाह्य अर्थ ही समझा जा सकता है। आँखोकी ही बात क्या सभी इन्द्रिय व मनकी यही बात है। अत. मन और इन्द्रियोका तो सहारा छोडो, मन और इन्द्रियोका श्रम बन्द करो, कुछ भी उपयोगमे न लावो ऐसी कोशिश करो। इसके बाद अन्तर्भाररहित ऐसे हल्के हो जावोगे जैसे कि मानो आकाशमे विलीन हुए जा रहे हो। फिर न कोई वजन है, न आकार है, किन्तु स्वच्छताका प्रकाश है जो कि निज प्रतिभास है। वह भी एक विकास है, उस विकासमे शुद्ध ज्ञान व आनन्दका अनुभव है। ऐसा निरपेक्ष सहज विकास जिस शक्तिपुञ्जका है वह प्रतिभासस्वरूप मैं हूँ।

परिणमन निराश्रित नही होता। परिणमन है तो किसका परिणमन। जिसका परिणमन है वह जितनेमे है उतनेमे ही परिणमन है। परिणमन आधारभूत वस्तुसे बाहर नही हो सकता। अत मेरा भी परिणमन इस

प्रतिभास स्वरूप मेरे से बाहर नही हो सकता, सो मेरेसे बाहर मेरी कुछ भी करतूत नही। इसी वस्तुस्वरूपके कारण अन्य किसी भी पदार्थकी करतूत मुझ मे आ नही सकती। इस कारण मेरा स्वरूप दुर्ग अभेद्य है।

आत्मन्! तुम अभेद्य किलेमे स्थित हो ऐसे ज्ञान विना शङ्कित होकर जगह जगह डोल रहे हो, निज स्वरूपास्तित्वकी महिमा देख पावो तो सर्व आपत्तिया एक साथ समाप्त हो जावेगी।

१ जुलाई १६६०

आत्मामे दो धारायें चल रही है— (१) ज्ञानधारा, (२) मोहधारा। ज्ञानधारामे सब प्रकार ज्ञान शामिल है व मोहधारामे सब प्रकारका मोह चाहे वह राग हो या द्वेष हो या मोह हो, शामिल है। (१) कोई आत्मा ऐसा है जिसमे ज्ञानधारा ही है मोहधारा नही और (२) कोई आत्मा ऐसा है जिसमे ज्ञानधारा बह रही है और मोहधारा (विभावधारा) बह रही है तो बह रही (३) कोई आत्मा ऐसा है जिसमे मोहधारा है और ज्ञानधाराका स्थान अज्ञान-धाराने ले लिया है।

प्रथम प्रकारका आत्मा या तो कारणपर्याय परमात्मा है या कार्य परमात्मा है। द्वितीय प्रकारका आत्मा अन्तरात्मा है। तृतीय प्रकारका आत्मा बहिरात्मा है।

ज्ञानधारा व रागधारा जहाँ एक आत्मामे बहती है, उपयोगकी अपेक्षा देखो तो ज्ञानधाराके उपयोगके समय तो यह एकदम कार्य परमात्मा होनेको ही है ऐसा मालूम होता है और रागधाराके उपयोगके समय यह एकदम दुर्गति का पात्र बन गया ऐसा प्रतीत होता है। इन दोनो धाराओका अन्तर्द्वन्द्व विकट सग्राम है। इनमे विजय किसकी होती है यह एक कौतुक अवश्य अपेक्षणीय हो जाता है।

खैर! यदि ऐसा अन्तर्द्वन्द्व भी चलने लगे तो भी अच्छा है, मोक्षमार्गित्व का तो निश्चय हो ही गया और कभी न कभी विजय ज्ञानकी ही होगी यह निश्चित होगया।

२ जुलाई १९६०

अनादिकालसे भ्रमते भ्रमते आज जो सुयोग पाया है वह बहुत महान् है। यहाँ जो मिला है उसका सदुपयोग करो तो भविष्य भी अच्छा है। यदि दुरुपयोग करोगे तो दुर्गति ही प्राप्त होगी।

अब देखो मिला क्या क्या है— (१) इन्द्रियां, (२) मन, (३) विशिष्ट ज्ञान, (४) कायबल, (५) वचनबल, (६) वैभव, (७) प्रतिष्ठा इत्यादि।

(१) इन्द्रियोंका सदुपयोग यह है कि इन्द्रियोंका संयम करो व पूजा, पात्र सेवा, पूज्यदर्शन, गुणगान, गुरुवाणीश्रवण, स्वाध्याय आदि सत्कर्तव्योंमे इन्द्रियोंका उपयोग करो।

(२) मनका सदुपयोग यह है कि मनका संयम करो, सर्व विकल्प छोड कुछ क्षण तो आत्माको परम विश्राम दो, सब जीवोंके सुखी होनेकी भावना रखो।

(३) विशिष्ट ज्ञानका यह सदुपयोग है कि वस्तुस्वरूपके यथार्थ बोधके बलसे परपदार्थोंकी उपेक्षा करके निज आत्मतत्त्वकी ओर उपयोगको लगावो।

(४) कायबलका यह सदुपयोग है कि रोगी, दुःखी, असमर्थ प्राणियोंकी सेवा करो और कभी कायको अत्यन्त निश्चल करके परमध्यानकी सहायता करो।

(५) वचन बलका सदुपयोग हित मित प्रिय वचन बोलना व वचनसंयम करके अन्तर्ध्वनि बलवती करना।

(६) वैभवका सदुपयोग उत्तम कार्योंमे दान देना है।

(७) प्रतिष्ठाका उपयोग सदाचारका पालन करना व महत्त्व बढाना है।

३ जुलाई १९६०

शान्तिका उपाय अन्य पदार्थसे उपेक्षा आना है। अन्य पदार्थमे उपेक्षा होनेका उपाय अन्य पदार्थ व अपने आत्माके स्वरूपका यथार्थ परिज्ञान है। इस यथार्थ परिज्ञानका उपाय वस्तुस्वरूपका अध्ययन है। अत. शान्तिके इच्छुकोंका कर्तव्य है कि द्रव्यस्वरूपके अध्ययन द्वारा यथार्थज्ञानी बनना चाहिये।

इसका स्पष्ट बोध ज्ञानी गुरुवोके सत्सङ्गसे उनके उपदेश द्वारा होना सुगम है।

प्रत्येक जीव एक स्वरूपवाले हैं। अत उनमे यह छटनी नही हो सकती। तात्पर्य यह है कि कोई भी अन्य जीव मेरा कुछ भी नही है। अज्ञान ही रिश्ता बनानेकी जड है। अज्ञान विपका वमन कर देखो—सर्वत्र स्वच्छता नजर आवेगी।

४ जुलाई १९६०

निज स्वरूपास्तित्वका किला शाश्वत एव दृढ किला है। इतना ही मेरा सर्वस्व है, यही लोक है, यही परलोक है। अपने चैतन्यलोकका ही द्रष्टा ज्ञानी सर्वदा प्रसन्न है, निराकुल है। इसका कुछ खोया नही जाता। इस लिये विह्वलता क्यो हो ? इसमे कुछ लगता नही इस लिये चिन्ता क्यो हो ? यह चैतन्य प्रभु स्वच्छस्वभावी है इसकी उपासना सकल पातकोका विनाश कर देती है। यह चैतन्य प्रभु परम ब्रह्म है इसका स्वभाव ही विकस्वर है, इसके विकस्वरकी पूर्णता चरम विकासमे होती है।

अहो, यह चैतन्य परम ब्रह्म शाश्वत परिपूर्ण है। वह पुराण पुरुष चैतन्य परम ब्रह्म भी परिपूर्ण है। इस परिपूर्ण चैतन्य परम ब्रह्मसे जो प्रकट होता है वह परिपूर्ण है। उसके प्रकट होनेपर भी परिपूर्ण है और उसके विलीन होने पर भी परिपूर्ण है। इस प्रभुमे अपूर्णता कही है ही नही। व्यक्तिमे विकार हो तो भी यह परिपूर्ण है, व्यक्तिमे अविकारता हो तो भी यह परिपूर्ण है।

५ जुलाई १९६०

उत्तम क्षेत्रपर रहना ध्यानसिद्धिका विशेप सहायक अङ्ग है। उत्तम स्थान तो पहाडीका शीतल स्थान है जहाँ जन सम्पर्क न हो। निर्जन स्थानमे रहने पर अनेक आशाये टूट जाती हैं, सन्मान अपमानभरा वातावरण न होनेसे अनेक विकल्प तरङ्गे मिट जाती है, जिसका प्रभाव यह होता है कि उपयोग अन्तर्वर्तनके लिये चल उठता है।

एकान्तनिवासकी साधना उन विरक्त पुरुषोसे बनती है जो रसनाके वश नही है और सात्त्विक यथालब्ध भोजनमे ही सतुष्ट हो सकते हैं। ध्यानसाधनके अर्थ इन दो बातोका होना आवश्यक है (१) यथालब्ध सात्त्विक भोजनकी ही

आदत होना (२) निर्जन स्थानमें वास बनाना।

६ जुलाई १९६०

चित्स्वभाव भावके परिज्ञान, परिचय अनुभव विना जीवन व्यतीत होना पूर्वभवोकी तरह इस भवको गमाना है, प्रगतिकी बात कुछ भी नही।

खुदके देहका तो सभी मनुष्योको पता है कैसा घिनावना है, इसके घिनावनेपनको रोकनेका कैसा यत्न करना पड़ता है ? तब त्वचापर कुछ शोभा बनाई जा पाती है। ऐसी ही तो पोल सभी मनुष्योके देहकी है, कहो कही तो अपनी यह पोल देरमे प्रकट हो और दूसरेकी पोल शीघ्र प्रकट हो। कुछ हो, देह असार है, इसकी प्रीतिमे सिवाय विपदाके और कुछ नही मिलता है।

ये देह भयानक, अपवित्र, विनाशीक व संताप - उत्पन्न करनेवाले है। इन्ही को आत्मसर्वस्व माननेवाला अज्ञानी जीव अपने स्वरूपकी महिमाको कैसे जान सकता है, कैसे मान सकता है, कैसे प्राप्तकर सकता है ?

अहो ! प्रियतम ! आनन्दके लिये कुछ परिश्रम भी तो नही करना बल्कि परिश्रम ही समाप्त करना है। एक ज्ञान ही से काम लो सर्व ऋद्धि स्वयं प्राप्त होगी।

शुद्धं चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम्।

७ जुलाई १९६०

आज ईसरीमे वर्षायोगकी प्रतिष्ठापना की। १६-३-६० के संकल्पके अनुसार प्रतिष्ठापना करके यह नियम किया कि—आकाशविमान, डोली जाति व नाव के अतिरिक्त सब यानोका (रेलका) निम्नांकित अवसरके अतिरिक्त त्याग रहेगा—

(१) निर्यापक गुरुके पास जाना आना।

(२) निर्यापक गुरुके निवासवाले प्रदेशमे आवश्यक समझनेपर वर्षायोग करने जाना आना व निर्यापक गुरुके पास होते हुए जाना आना।

(३) प्रतिकूल (बहु जनबाधक) अवसरमे उचित स्थानपर जाना।

(४) धर्मसाधनार्थ प्रोग्राम होनेपर एकान्त, तीर्थ, वनस्थलीके स्थानोपर

जाना व गुरु आज्ञासे अन्यत्र जाना आना।

(५) किसी विशिष्ट पुरुषके समाधिमरणके अवसरमे जाना आना।

नोट — अवशिष्ट यानोमे से गत १० वर्षोमे केवल रेलका ही उपयोग हुआ, उसकी भी अब मर्यादा हो गई।

८ जुलाई १९६०

हे वीर प्रभो! तुम वीर हो अर्थात् विक्रमी हो, मोहसुभटको पछाड देनेमे पूर्ण कुशल समर्थ हो, वीरयते शरयते 'विक्रामति इति वीर । अहो ! त्व कर्म-भूभृता भेत्तासि।'

हे वीर प्रभो! तुम अनुपम ज्ञानप्रकाशके देने वाले हो, भव्योके ज्ञानविकास के निरपेक्ष स्वच्छ निमित्त हो, 'विशिष्टा ईं ज्ञानलक्ष्मी राति ददाति इति वीर। अहो त्व विश्वतत्त्वाना ज्ञाताऽसि।

हे वीर प्रभो! तुम हितकर सत्य श्रेयोमार्गके उपदेष्टा हो, भव्यजीवोको ब्रह्मप्रगतिमार्गमे ले जानेवाले हो, 'विशेषेण ईरते प्रेरयति इति वीर। अहो त्व मोक्षमार्गस्य नेताऽसि।'

९ जुलाई १९६०

आज वीर शासन जयन्तीका दिन है अर्थात् महावीर स्वामीके समयमे उनके कैवल्यकी प्राप्ति होने पर सर्व प्रथम श्रावणवदी १ को दिव्यध्वनि हुई थी। उन्ही के शासनकालमे आज हम सब सर्वक्लेशक्षयके उपायभूत मार्गको पा रहे हैं। वीर प्रभुने व्यक्तिगत तौरसे हम पर करुणा करनेका विभाव नहीं किया था, परन्तु महान् आत्माओकी, परम आत्माओकी ऐसी प्राकृतिक परि-णति होती है, जिसके निमित्तसे अपरिमित आत्माओका स्वय कल्याण होता है। हम लोगोंके कल्याणके मूल हेतुभूत महावीर भगवान्का हम कितना आभार मानें? जितना माने वही थोडा है। किसके लिये आभार माने? आभार माननेसे भगवान् महावीरका क्या बनना है? उनका हमारी इन चेष्टा से क्या लाभ है? आभार माननेसे उत्पन्न हुआ विनय गुण मेरे ही लाभका कारण है। अहो देखो कैसा निरपेक्ष परम उपकार वीर प्रभुका है कि उनके

उपदेश धारणसे अपना लाभ, उनके भक्तोके सहवाससे अपना लाभ, उनके ध्यानसे अपना लाभ, उनके कृतज्ञ होनेसे अपना लाभ, उनका आभार मानसे अपना लाभ, उनकी पूजासे अपना लाभ, उनकी गुणकथासे अपना लाभ। वीरप्रभु अनन्तशक्ति सम्पन्न हैं। वे तो जो हैं सो ही हैं, परम वीतराग हैं, सर्वज्ञ हैं। उनकी छत्रछायामे अपना लाभ ही लाभ है। श्रीमद् भगवान् वीर-प्रभुकी जय, वीरके शासनकी जय।

१० जुलाई १९६०

हे प्रभो ! तुम पाषाण मूर्तिवत् निश्चल हो। तुम्हारी निश्चलता पाषाण-मूर्तिसे जानी जाती है। तब फिर यदि पाषाणमूर्तिके सामने बैठकर तुम्हारी निश्चलताका भान न कर सकूं तो फिर उपमा देना किस काम आवेगी।

हे नाथ ! आपने अपने उपयोगको अपने आपमे ऐसा दृढ स्थिर किया था कि रच भी तो कुछ फेर न हुआ। उसही का तो यह सुफल है कि आप सदाके लिये बिलकुल समस्त विह्वलताओंसे मुक्त हो गये हो।

हे नाथ ! तुम्हारे ही समीप रहूँ, यहाँ किसी विपत्तिका नाम भी नही है। अहो ! अनन्त सुखामृतसागर, धीर, कलङ्करजोमल भूरि समीर, विखण्डित-काम, विराम, विमोह। सदा मेरे उपयोगरूप सिंहासन विराजमान पर रहो। देव ! फिर मुझे रच भी व्यथा नही और आपकी मेरी दृष्टिमे प्रतिष्ठा भी बनी रहेगी।

११ जुलाई १९६०

जगत् क्या है ? विनश्वर परिणमनोकी क्षणिक हलन चलन। इससे तुम अपने लिये कुछ मगल देखना चाहते हो ? अरे भैया ! अटपट इच्छाये छोड दो। खुद खुदको देखो और खुदसे ही खुदकी आशा रखो। मेरा आनन्द मुझमे ही है, मुझमें क्या, मैं स्वय आनन्दकी मूर्ति हूँ, आनन्दकी मूर्ति क्या, मैं स्वय आनन्दका पुञ्ज हूँ, आनन्दका पुञ्ज क्या, मैं स्वय आनन्दघन हूँ।

होता स्वय जगतपरिणाम। मैं जगका करता क्या काम ॥
दूर हटो परकृत परिणाम। सहजानन्द रहूँ अभिराम ॥
ॐ तत् सत् परमात्मने नम.।

१२ जुलाई १९६०

हे आत्मन् ! देख, अबकी वारका अवसर चूक जाने पर फिर पता लगना कठिन है कि तुम कहा हो और कैसी परिस्थितिमें हो ? कहो ऐसी दुर्गतिमे अनन्तकाल भी बीत जाय। क्या तुम्हें अपनी बरबादी पसन्द है ? अपनी बरबादी तो समझदारको पसन्द नही हुआ करती। देख, तू इन्द्रिय नही, मन नही, फिर इनकी अधीनता क्यो स्वीकार करता है ? देख तू मात्र अपने स्वरूपास्तित्वमय है, तुझसे यह देह भिन्न है, वैभव तो प्रकट भिन्न है, फिर इनकी विवशता क्यो स्वीकारता है, देख तू चितस्वभावमात्र है शाश्वत स्वच्छस्वरूप है ? फिर रागादिकलकोके वश क्यो रहना चाहता है ? अज्ञान विषका वमन कर। ज्ञानसुधाका पान कर। हूँ स्वतन्त्र निश्चल निष्काम। ज्ञाता द्रष्टा आतमराम ॥

१३ जुलाई १९६०

कोई किसीका नही। यहा जो कोई आदर करता है वह अपने परिणाम को करता है अथवा अपने परिणाममे पाये हुए भावका आदर करता है। दूसरे की क्रियाको देखकर अन्य कोई यह मान ले कि वह मेरा आदर करता है तो बताओ पागलमे और उसमे क्या फर्क रहा ? पागल भी तो आते जातेको देख कर, आते जातेके वैभवको देखकर अपना मानने लगता और अपना बनकर रह पाता कुछ नही, अत उसे दु खी ही होना पडता। इसी तरह मोहके मुग्ध पागल प्राणी भी तो आते जातेको देखकर विनश्वर वैभवको देखकर अपना मानने लगता और अपना कुछ बन सकता नही, कुछ अपना है ही नही, सो उसकी दशाको देखकर उसे दुखी ही होना पडता है।

हे आत्मन् ! अन्तरात्मासे देख, अन्तरात्माको देख, अन्तरात्मामे रति कर, अन्तरात्मामे तुष्ट होओ। अन्य सब मायारूप है। मायाकी रति छोडो, परमार्थमे दृष्टि दो।

१४ जुलाई १९६०

हे परमाराध्य निज प्रभो ! स्वय ! खुद ! परमात्मन् ! तेरी लीला विचित्र

है, तू ही अपनी सृष्टिका उपादान है, तू ही व्यक्त सृष्टिका निमित्त है, व्यक्त सृष्टिका कारण भी मूलमे तेरी इच्छा है, तू एकरूप है और बहुरूप हो रहा है। बहुरूपमे जब उपेक्षा हो जाती है तब उन सब बहुरूपोका विलय अथवा प्रलय हो जाता है। हे निज परमात्मन् ! इस बहुरूपिणी सृष्टिमे तेरी ही शुद्ध-प्रकृति तिरोभूत होकर अशुद्ध प्रकृति आविर्भूत हो रही है, ज्ञानका स्थान अज्ञानने ले लिया है, स्वच्छताका स्थान मलिनताने ले लिया है, शान्तिका स्थान अशान्तिने ले लिया है।

हे निजनाथ ! तेरी लीला विचित्र है— तू तो आकाशवत् शुद्ध, अमूर्त, सच्चिदानन्दमय है. तेरी यह सृष्टि कैसे बन गई ? इस समस्याके समझनेमे लोग हैरान हो रहे हैं और मर्म न समझ पानेके कारण इस नतीजेपर वे पहुचे हैं कि कोई एक अलगसे ऐसा ईश्वर है जो जगतके सब जीवोके जन्म मरण सृष्टि, सुख, दुख वगैरहकी व्यवस्था कर रहा है। यदि यह परिज्ञान हो जाय कि सब आत्मा परमात्मस्वभाव हैं और स्वरूपत एक हैं तो सारी समस्या हल हो जाय। जो व्यक्त परमात्मा है उनका अनत ज्ञान, अनत दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्दशक्तिमय स्वरूप ध्यानमे आनेसे भव्य जीवोको मोक्षका उपाय प्राप्त होता है।

१५ जुलाई १९६०

आत्मन् ! तुम अपने परिणाम कर लेनेके सिवाय अन्य कुछ करनेमे तो समर्थ हो नहीं। सो अन्य किसीका कुछ करनेका परिणामरूप परिणाम क्यो करते हो ? इसमे न हित है न हाथ रहता कुछ है। समस्त परद्रव्य अपने-अपने अस्तित्वको लिये हुए हैं, उनसे तुममे कुछ नही होता। अब अपने आपके सहज स्वरूपकी दृष्टि करो। करो एक लक्ष्य होकर स्वभाव दृष्टि। रहो नि शङ्क (निर्विकल्प) होकर स्वभाव दृष्टिमे। स्वभाव ही शरण है, स्वभाव दृष्टि ही हित है।

अहो ! अमूर्त, निराबाध, स्वतन्त्र चित्प्रकाशमय यह अनुपम स्वरूप जय-वत होओ। हे भगवान् आत्मस्वभाव ! तेरे ही दर्शन निरन्तर होओ, तेरे दर्शन

हो परमकल्याण है। अब इसको कुछ नही चाहिये। इसका कोई दूसरा कुछ करनेमे समर्थ नही है। किसी दूसरेने अच्छा प्रशसा बोल दिया मुझे, तो मेरा उससे कुछ कल्याण तो हो ही नही जायगा, कहो उल्टा उस आश्रयको निमित्त पाकर स्वभावसे च्युत होकर परदृष्टिमे रच जाऊ तो अकल्याण कर जाऊ। किसी दूसरेने निन्दाके शब्द कह दिये अथवा अपमानसूचक चेष्टायें कर दी तो वे चेष्टायें भी तुझमे अत्यन्त पृथक् हैं। उनसे मुझमे कुछ परिणमन नही होता, तू ही स्वय प्रमादवश होकर अपने स्वभावसे च्युत होकर परका आश्रय करके, लक्ष्य करके, पर्यायबुद्धिके कारण अपना अपमान समझकर सक्लिष्ट हो जाता है।

प्रिय आत्मन्! तू तो एक सनातन चित्स्वभावमय पदार्थ है। जो पर है वह तू नही, जो अध्रुव है वह तू नही, तू अखण्ड, अनाद्यनन्त, अभेद एक चेतन है। तेरा नाम नही, तेरी शकल नही। व्यर्थके विकल्पजालोसे पृथक् होओ, निज ज्ञानानन्द स्वभावमे विलीन हो जाओ।

१६ जुलाई १९६०

एक निज स्वभावकी उपासनामे सारा अपना बल लगा दो। एक लक्ष्य दृढ बना लो, अन्यथा सवत्र आपत्तियाँ ही भोगोगे। हे आत्मन्! बता सारभूत काम क्या है? सब जगह डोलते रहनेमे कुछ सार समझमे आया है? नही। परिभ्रमण (विहार) करते हुएमे कुछ सार समझमे आया है? नही। किसी सस्थाकी सम्हारके उद्योग करते रहनेमे कुछ सार समझमे आया है? नही। किसी व्यक्ति या समाजसे कुछ बाते करते रहनेमे कुछ सार समझमे आया है? नही।

सार तो इस परिस्थितिमे समझमे आया है कि एकान्त स्थान हो, जहाँ निज ध्यानकर अधिक अवसर बने। ऐसा करते हुए उद्वेग व खिन्नता न आ पावे। खैर! सब कुछ साधारणतया देख लेनेके बाद बुद्धि इस ओर जाती है कि किसी एक स्थान पर रहा जावे, वहाँ सरस्वती भडार काफी हो, जिससे

ज्ञानार्जनका सिलासिला वरावर बना रहे, वह स्थान कुछ जगल व निर्जन जैसा हो।

इस लोकमें परिचय क्या वढाना ? लोगोने समझा तो क्या न समझा तो क्या ? हे आत्मन् ! तेरे अहर्निश कर्मबन्धन हो रहा हे। कैसा क्या हो रहा है यह सब तेरे भाव पर निर्भर है। अपने भाव सभाल, असयममे मत वह। इन्द्रिय विषयोकी प्रीति छोड, चैतन्यमात्र आत्मतत्त्वकी प्रतीतिमे बसा रहा। ॐ शुद्ध चिदस्मि।

१७ जुलाई १६६०

अन्य कोई भी पदार्थ आत्माका हित कर सकने वाला नही हे। आत्माको शान्ति शुद्ध ज्ञानके उपयोग द्वारा ही प्राप्त हो सकती है। लाखो उपाय कर लो, आखिर सव श्रम छोडकर शुद्ध ज्ञानभावके उपयोगसे ही पूरा पडेगा तुम्हारा।

इस लोकमे अनेक भवोमे अनेक बार अनेक प्रकारके भोग भोगे इस जीव ने। फिर भी नित-नित नूतन-नूतन इन्द्रिय विषय लग रहा है, इसे यह सब गहन मोहकी गहन महिमा है। मलिन सस्कार है, मलिन योग्यता है, अत प्रति-समय नूतन-नूतन विभाव परिणति होती है, इच्छा होती है। इस प्रौढ इच्छा के कारण बाह्य विषय भी नूतन-नूतन जचता है। ज्ञानबलसे एक इस इच्छा-रूपी जडको मूलसे काट दो विडावनाका सारा वृक्ष एकदम गिर जायगा और फिर सूख जायगा।

जाननमात्र स्वरूपकी दृष्टिकी महिमा अगाध है।

१८ जुलाई १६६०

आत्मोन्नतिके लिये इस प्रकार दो तरहकी श्रद्धा तो होना ही चाहिये—
(१) मैं सवसे निराला अपने आनन्दकी भूमि स्वरूप ही हूँ, अपने स्वरूपमे ही अपना कार्य कर पाता हूँ, अन्य सारी चीजे मुझसे अत्यन्त भिन्न हैं, अन्यके किसी परिणमनसे मुझमे कुछ भी सुधार विगाड होता नही, मेरे किसी भाव के कारण किसी अन्यमे कुछ हेर-फेर, परिवर्तन, परिणमन होता नही; मैं तो

सिर्फ भाव करता रहता हूं, मेरे ही भावसे मेरेको बन्धन है, मेरे ही भावसे मेरेको मोक्ष है, मेरे ही भावसे मेरेको आनन्द है, मेरे ही भावमे मेरेको क्लेश है, मै सबसे भिन्न हूँ, मेरा यहा कुछ नही है, अपरिचित मनुष्य आदि मुझसे जितने भिन्न हैं उतने ही भिन्न परिचित मनुष्यादि हैं। (२) सभी जीव एक-स्वरूप हैं, जैसा मेरा स्वरूप है वैसा ही सब जीवोका स्वरूप है, सभी जीव भगवत्स्वरूप हैं।

१९ जुलाई १९६०

विकल्प ही क्लेश है। विकल्प होते हैं किसी न किसी परपदार्थका ख्याल रख कर। जिस पदार्थका ख्याल रखकर विकल्प किये जाते हैं उन पदार्थोका परिणमन विकल्पोके कारण नही है। विकल्पोके कारण जो कुछ होता है वह है क्लेश। देखो— विकल्पोके कारण परपदार्थका परिणमन नही होता, पर पदार्थोके परिणमनके कारण आत्मामे क्लेश या मौज कुछ नही होता। विकल्प जिस प्रकारके हो उस प्रकारका परपदार्थमे परिणमन हो ऐसा कुछ भी नियम नही, बाह्यमे जिस प्रकारका परिणमन हो उस प्रकारका आत्मामे क्लेश या मौज हो ऐसा भी नियम नही। परपदार्थका आत्मासे सम्बन्ध नही। अत विकल्प करना मिथ्या है। विकल्प मिथ्या हैं। विकल्प अज्ञानभाव हैं।

आत्मा विकल्प कर ले या विकल्प न करके मात्र ज्ञाता द्रष्टा रहे, दो ही तो काम कर सकता है और तो कुछ परपदार्थमे कर ही नही सकता। सो देखो विकल्प तो मिथ्याभाव है। विकल्पचक्रमे लाभ तो रच भी नही है, हानि इतनी बडी है कि सरासर आत्माकी ज्ञान व आनन्दकी निधि खतम हो रही है। व्यर्थकी बात छोडो, विकल्पजालसे पृथक् होकर निर्विकल्प समाधिभावसे उत्पन्न सहज परम आनन्दरूपी अमृतका पान करो।

२० जुलाई १९६०

इच्छा ही क्लेश है, वह चाहे किसी प्रकारकी भी हो। जिनेश्वर जो हुए उन्होने और किया ही क्या? इच्छाका अभाव किया। इच्छाका अभाव हमे करना है। इच्छासे ऐसा मुख मोडो कि किसी भी प्रकारकी इच्छा न रहे।

ऐसा करनेका उपाय क्या है ? वह उपयोगात्मक ढूढो, क्योंकि उपयोग कहीं न रहे, ऐसी स्थिति जीवकी कभी नही होती। तात्पर्य यह है कि यह जीव किस तत्त्वका उपयोग करे जिससे कि इच्छाओंका अभाव हो जाय। वह तत्त्व है चित्स्वभाव। चित्स्वभावके उपयोगमे, अनुभवसे, आश्रयसे इच्छाओंका अभाव होकर निर्मलता वीतरागता प्रकट होती है।

प्रश्न—किसके चित्स्वभावका ध्यान करे ? अपने या अन्य जीवके या परमेष्ठियोंके ? उत्तर— यह प्रश्न ही नहीं होना चाहिये, क्योंकि किसी विशिष्ट आधारका अभिप्राय लेकर चित्स्वभावका कोई ध्यान करना चाहे तो चित्स्वभावका ध्यान होता ही नही है। यद्यपि चित्स्वभाव आत्माद्रव्यसे पृथक् सत्ता रखने वाला तत्त्व नहीं है, अभेद भावदृष्टिसे उपास्यमान आत्मद्रव्यका परमपारिणामिक भाव है तथापि आधारभूत द्रव्यका अभिप्राय रखकर चित्स्वभावका यथार्थ अनुभव नहीं किया जा सकता। इस कारण चित्स्वभावका निरपेक्ष अर्थात् षट्कारक निरपेक्ष ध्यान करना चाहिये। भेददृष्टिसे दृशिज्ञप्तिस्वभाव व अभेददृष्टिसे चित्स्वभाव जो कि न एक है न अनेक है, जो कि न विस्तृत है न संक्षिप्त है, जो कि न सादि है न सान्त है, ऐसे चिच्चमत्कार स्वरूपमात्र चित्स्वरूप भावका उपयोग सत्य शरण है।

२१ जुलाई १९६०

द्रव्य गुण पर्यायसे अतिक्रान्त एक चित्स्वभावका ज्ञायक पुरुष ही तत्त्वज्ञानी है। उस विद्याकी साधना द्रव्य गुण पर्यायके अवबोधसे प्रारम्भ की जाती है। जैसे अ, आ, इ, ई वर्णोंमे अर्थ सिद्ध नहीं है तो भी अ, आ, इ, ई से सीखकर मानव अर्थवती अनेक विद्याओंकी सिद्धि कर लेता है, इस सिद्धिका निष्ठापक अब अ, आ, इ, ई आदि विभिन्न वर्णोंका उपयोग नही करता। इसी तरह द्रव्य गुण पर्याय आदिके विकल्पोंमे परम तत्त्व सिद्ध नही है तो भी द्रव्य गुण पर्यायके अवबोधसे शिक्षित होकर पुरुष परमार्थभूत सर्वसिद्धि स्वरूप परमपारिणामिक भावको अनुभूति (सिद्धि) कर लेता है।

इस सिद्धिका निष्ठायक अब द्रव्य गुण पर्याय आदि विविध विकल्पोका उपयोग नही करता ।

'मैं चित्स्वभाव हू' ऐसा भी विकल्प है तब तक चित्स्वभावकी अनुभूति नही । चित्स्वभावकी अनुभूतिमे चित्प्रकाश व सहज आनन्दका अनुभव है, विकल्प कोई नही।

४ अगस्त १९६०

प्रिय आत्मन् ! तू चित्स्वभाव है, सब परभावोसे विविक्त है । इस लोकमे सर्वत्र परिभ्रमण करके अनादिसे क्लेश भोगे हैं, अनन्त भव यो ही खोये बता उन अनन्त भवोमे से किसी भी एक भवका कोई परिचित है यहा, हित है यहा । अरे क्या चर्चा की, हित और परिचित तो यहाँ भी तेरा कोई नही । जो लोग इस भवमूर्तिका परिचय कर रहे है और इसीही वजहसे प्रम दिखा रहे हैं, अरे क्या चर्चा को, मुझपर कोई प्रेम दिखा ही नही रहा है, सभी अपनी कषायकी पुष्टिका यत्न कर रहे हैं । खैर, हाँ तो जो लोग इस भवमूर्तिसे प्रेम दिखा रहे हैं उन्हे मुझ आत्मतत्त्वकी कोई परवाह नही । कोई मेरा कुछ नही कर रहे हैं, कोई मेरा क्या करेगा, कुछ कर ही नही सकता, कोई किसी अन्यमे, क्योकि सबकी सत्ता जुदी-जुदी है ।

प्रिय ! बडा सकट है, बडा सकट होगा जो अपने स्वभावके उपयोगसे च्युत होकर परकी कीमत करते फिरोगे, परकी उपासना करते रहोगे । अरे दुरात्मन् ! अपनी आपत्तिको आपत्ति न समझकर इसीमे चैन मान रहा है । प्रिय, बडा धोखा है, बुरी मौत मरोगे, बुरा जिओगे, ससार कानन बडा गहन है, परिभ्रमणकानन बडा गहन है, कुलकोटिया बडी गहन हैं, पता न पडेगा, कहा पडे हो ? तेरा कोई यहा जानने वाला है या मानने वाला है ? प्रिय समझ तू यहाँ जन्मा ही नही है और जन्मा सो है उसका लाभ गुप्त होकर उठा ले ।

६ अगस्त १९६०

१- चित्स्वभावका स्वप्रतिष्ठानिबन्धक जो अगुरुलघु गुणका षड्हानि वृद्धि

रूप अर्थ पर्याय है वह निगोदमे लेकर सिद्धो तक सभीमे समानरूप से होता है या नही।

२- रागी जीवमे अर्थपर्याय व विभाव गुणव्यञ्जन पर्याय एक समयमे (युगपत्) होते रहते या नही।

३- रागी जीवमे अर्थपर्याय तिरोहित है या नित्य उदित है।

४- मुक्त जीवमे अर्थपर्याय ही विस्तृत होकर स्वभावगुणव्यञ्जन पर्यायरूप हो जाती है या अर्थपर्याय व स्वभावगुणव्यञ्जन पर्याय दोनो रहती हैं।

१४ अगस्त १९६०

समयसारमे बन्धाधिकारमें जो २७० न० की गाथा है उसकी आत्मख्याति टीकामे बीचमे एक वाक्य छूटा हुआ मालूम होता है वह इस प्रकार हो सकता है— 'तथा च यदिदं नारकोऽहमित्याद्यध्यवसानं तदथज्ञानमयत्वेनात्मनः सदहेतुकज्ञायकैकभावस्य विपच्यमानाना नारकादिभावाना विशेषाज्ञानेन विविक्तात्माऽज्ञानादस्ति तावदज्ञानं विविक्तात्माऽदर्शनादस्ति च मिथ्यादर्शनं विविक्तात्मानाचरणादस्ति चाचारित्रम्।"

असली पाठ क्या होगा ? उसमे इसमे चाहे किसी शब्दका अन्तर हो, किन्तु यह पाठ होना आवश्यक मालूम होता है। उसके कारण ये मालूम होते है—

(१) इसी गाथाकी टीकामे पहिले लिखा कि "एतानि किल त्रिविधान्यध्यवसानानि" सो तीन अध्यवसान बताये जाते है, जिसमे दो का इस टीकामे उल्लेख है।

(२) दो अध्यवसानोका उल्लेख करके निष्कर्षात्मक वाक्य जो दिया है उसमे अध्यवसानोके विरुद्ध तीन विशेषण लिखे हैं—सदहेतुकज्ञप्त्येकक्रिय, सदहेतुकज्ञायकैकभाव, सदहेतुकज्ञानैकभाव।

(३) इन विशेषणोसे यह भी सिद्ध होता है कि सदहेतुकज्ञायकैकभाव के विरुद्धवाला अध्यवसानका वर्णन बीचमे किया जाना चाहिये क्योकि यह विशेषण भी बीचमे दिया गया है।

(४) इस गाथासे पूर्वकी गाथाओमे भी यह प्रकरण इस क्रम आया है, जिसमे भी उक्त सब बातें सिद्ध होती हैं।

१ अक्तूबर १६६०

यदि निज स्वभावकी दृष्टि नही रह सकती तो उस क्षणकी परिणतिपर विषाद ही कर। निजस्वभावकी दृष्टि विना अनन्तकाल विकल्पक्लेशोमे, त्रिविध भवोमे आकुलतामय गया। आजका पाया समागम, जो कि दुर्लभतासे मिला, यदि निष्फल गया तो क्या हाल होगा इसका ? निर्देश गई गुजरी हालतोसे मिल जाता है।

जगत्मे अनन्तो जीव घोर दुखी हैं, उनकी अपेक्षा तेरेको तो कुछ दुःख नही है, किन्तु जिस किसी भी विकल्पको वनाकर अपनेको दुःखी अनुभव करने लगता है, यह गटी वेवकूफी है।

शुद्ध चिन्मात्र स्वरूपवाला होकर भी यह आत्मद्रव्य पुद्गलपिण्ड मूर्तिमे अहत्व भाव करनेकी सूचना देनेवाली चेष्टाये (विकल्प) करता है। यह वडे खेदकी वात है कि यह आत्मा अनादिसिद्ध निज परमात्मतत्त्वका अनादर करके निज प्रभुको आपत्तियोमे फसाये हुए रह रहा है।

२ अक्तूबर १६६०

मैं ज्ञानमात्र हूँ, इस तत्त्वभावनामे दृढता हो यही सर्वोत्तम व्यवसाय है। इससे अधिक जो अपनेमे सकल्प किया वही अध्यवसान है, जो कि आकुलताका कारण है।

१६ अक्तूबर १६६०

सहजानन्द चिद्रूप स्वरूपावाप्तिहेतवे।
नमो याथात्म्यसिद्ध्यर्थं सहजाध्यात्मदृष्टये॥

२२ अक्तूबर १६६०

मैं ३ जुलाईको ईसरी आगया था। पूज्य श्री गुरुजी महाराजकी विशेषतया आज्ञा थी कि मैं ईसरी ही चातुर्मास करू, मेरी भी उनकी सेवामे चातुर्मास व्यतीत करनेकी इच्छा हुई, चातुर्मास (वर्षायोग), ईसरी हो गया। ईसरीमे मेरे मन लगनेका कोई साधन न था सिवाय इसके कि महाराजकी सेवासे अपनी प्रसन्नता रख लू तथा श्री प० वशीधरजी न्यायालङ्कार इन्दौरवाले भी आगये

थे सो कुछ उनसे वार्तालापमे समय कट जाय। ईसरी १७-१८ दिन तक लेखनादि व्यवस्थित चला। पश्चात् जब रोज रोज ही यह देखता था कि यहाँ बन्धु जन चलते फिरते व शक्तिमान् होते हुए भी केवल अपने शरीरकी संभालमे रहते हैं, किसी दूसरे पुरुषकी सेवामे कुछ कार्य करनेमे शरीरका टोटा समझा जाता है तो इन बातोंको देखकर मेरा भी उत्साह कम होगया। इसी कारण गत ३ माहोमे सिवाय कभी कभी कुछ लिख सकनेके और कुछ न लिख सका। सुबह व दुपहरकी शास्त्रसभा, प्रातः महाराजजी के पास समयसारपाठ, दुपहर को महाराजके पास निजी स्वाध्याय व महाराजके पास जब चाहे कई बार बैठ जाना व सेवाका सौभाग्य मानना, इसमे ही समय बिताया। मुझे इस चातुर्मास मे महाराजकी सेवा व प० जी के समागमसे बहुत आनन्द रहा।

कल दुपहर बाद ईसरीसे चला और आज शिखरजी श्री पार्श्वनाथ टोक की वदना की। दुपहरको मधुवनमे श्री पार्श्वनाथ चैत्यालयमे सामायिककी। आनन्द मे चित्त रहा।

२३ अक्तूबर १९६०

आज प्रात.काल ५॥ बजे चलकर ९—५५ पर बडाकर पहुचे। दुपहरकी सामायिक करनेके पश्चात् आहारोपरान्त २ बजे वहासे चले और ५। बजे गिरीडीह आगये। बडाकरमे जलवायु बहुत उत्तम है। एक श्वेताम्बर जैन मन्दिर है। अनुश्रुति यह है कि यह श्री भगवान् महावीरस्वामीका केवल ज्ञान स्थान है। लगता भी ऐसा है। शास्त्रोमे ऋजुकूला नदी का वर्णन आता है। श्वेताम्बर जैनमन्दिरपर पाटिये पर ऋजुवाला नदो लिखी है। कुछ हो स्थान सुरम्य है, पानी अच्छा है, ध्यान योग्य स्थान है। इस नदीकी शिखरजीके ओर के किनारेपर यदि दिगम्बर जैन मन्दिर होवे तो उत्तम है।

२४ अक्तूबर १९६०

यदि स्वाध्याय कर रहे हो, साधर्मीपुरुषोसे धर्मवार्ता कर रहे हो, या लिख रहे हो या अन्य आवश्यक कार्य कर रहे हो तब तो नेत्रोसे ठीक काम लिया जाय बाकी समय नेत्रोको आराम दिया जाय याने बद रखा जाय तो बडे लाभकी

वात है। पहिला लाभ तो यह हे कि विकार भावको अवसर कम मिलेगा, दूसरा लाभ यह है कि नेत्रशक्ति क्षीण न होगी, तीसरा लाभ यह है कि अन्तर्दृष्टि करनेका अवसर अधिक आ सकेगा।

२५ अक्तूबर १६६०

यह जीव विचित्र कर्मोंके वन्धनमे फसा है। इसके उद्धारका उपाय सुगम होनेपर भी कठिन वन रहा है। यह आत्मा अकेला है, इसका शरण अन्य कोई हे ही नही। जिस समय अन्य कोई शरण सा दीखता है वह शरणाभास है, वह भी पुण्यके उदयसे वैसा अवसर मिता है, पुण्यका वन्ध होता है विशुद्ध परिणामसे, अत लौकिक शरण, साता भी होना भी इस आत्माकी ही स्वयकी विशुद्धिका फल है सो वस्तुत आत्माकी विशुद्धि ही शरण है।

२६ अक्तूबर १६६०

सव आचारोमेप्र धान आचार ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्यसे तनवल मनवल, वचनबल व आत्मवलकी वृद्धि होती है। ब्रह्मचर्यके विरुद्ध जो विकारभाव है उसके होते सेते क्या तप, व्रत या सयम हो सकता है। ब्रह्मचर्यके होनेपर ही तप, व्रत, सयम साथक है। तप, व्रत सयमका उद्देश्य है शुद्धबुद्धैकस्वभाव निज परमात्मतत्त्वमे उपयोग लगाना, उसकी पूर्ति क्या कामभावके होते सभव है? असभव है। लोकमे भी पुरुष काम भावके होते हुए बुद्धिहीन हो जाते हैं वे क्या उस समय लोकोत्तम काम करनेके योग्य हैं? अयोग्य हैं। ब्रह्मचर्यका घात जीवका अहित ही करता है। ब्रह्मचर्य उत्थान का प्रथम सोपान है।

२७ अक्तूबर १६६०

सुख, दुख व आनन्द जानकारीके साथ लगे हुए है, परद्रव्यके साथ नही। इस वातका निर्णय करलो कि कैसी जानकारी की जावे जिससे सुख मिले व कैसी जानकारी की जावे जिससे दुख मिले तथा कैसी जानकारीकी जावे जिसमे आनन्द मिले? बस जानकारीकी विशेषताका निर्णय कर लो। जैसी जानकारी रखनेसे आनन्द प्राप्त होता है वैसी जानकारीमे लग जावो। यही आनन्द प्राप्त करनेका सच्चा उपाय है, यही शान्ति प्राप्त करनेका

यथार्थ उपाय है। सहज निरपेक्ष आत्मस्वभावकी जानकारीके उपयोगसे शान्ति मिलती है। शान्ति व्रत, तप, पूजा, स्तवन, मौन, उपवास आदि अन्य किन्ही भी उपायोसे नही मिलती। हाँ, आत्मस्वभावकी जानकारीका जब उपयोग नही रहता तो उस उपयोगके बनानेके लिये व उपयोगको अधिकतया ऐसा ही रखने के लिये व्रत, तप, पूजा, स्तवन, मौन, उपवास आदि अनेक यत्न हुआ करते हैं।

व्रत, तप, पूजा आदिसे तो अनेक प्रकारके विषयाभिलाष, कषाय आदि अशुभोपयोग दूर होते है। उस अवसरमे साधक पुरुष आत्मस्वभावकी दृष्टिमे सुगमतया आ जाता है। अत व्रत, तप, पूजा आदि भी उपादेय है किन्तु सर्वथा उपादेय नही है। सर्वथा उपादेय तो आत्मस्वभाव दृष्टि है।

२८ अक्तूर १९६०

लोकोपकारका कार्य अनाशक्तिसे हो तो अच्छा है। एक दो बार बिना जोर डाले लाभ अलाभकी बात सुनाकर कह देना ही पर्याप्त है। जोर डालने का मतलब तुम्हारी कषाय प्रबल है और साधारणतया कह देनेका मतलब तुममे जो तद्विषयक राग है उसे निकालकर बाहर कर दिया।

जीव अपना ही परिणाम करनेकी सामर्थ्य रखता है, सभी जीव, सभी पुद्गल व अन्य सभी पदार्थ अपना अपना ही परिणमन करनेकी सामार्थ्य रखते हे। जब कोई किसी अन्यका परिणमन नही कर सकता तब किसी पर किसी बातके माननेका जोर डालनेसे क्या मतलब। हाँ तो तुममे रागका उदय हुआ तो तुम उसको निकाल दो।

२९ अक्तूबर १९६०

यद्यपि ऐमा करनेका सामार्थ्य बुद्धिमान् महापुरुषोमे होता है कि अभी तो ऐसे भाव हो कि उसके फलमें नरक जाना पडेगा और उस क्षणके बाद तुरन्त ऐसे भाव हो कि उसके फलमे उच्च देवकी ऋद्धि भोगेगा, तथापि ऐसा ही यत्न रखना उचित है कि परिणाम शुद्धताकी ओर ही विशेषतया जावे।

मैं चित्स्वभाव मात्र हूँ, शुद्ध चिन्मय हू, चित्प्रतिभासमात्र हू। चित्सर्वस्व

हू। मेरा सर्वस्व मुझमे ही है। मेरा जो कुछ है वह अन्यत्र नही खोया जा सकता। यदि मेरा कुछ खोया गया है तो वह मुझमे ही खोया गया है। मुझमे ही ढूढे जानेसे वह मिल जायगा। मेरा कुछ खोया जाता है तो वह दृष्टिसे ही से खोया जाता है और जब मिलना होता है तो दृष्टिसे ही वह मिल जाया करता है।

मैं अखण्ड हूँ, परिपूर्ण हूँ, ज्ञानानन्दरस निर्भर हूँ।

३० अक्तूबर १९६०

हे आत्मन्! दृष्टि तेरा ही तो परिणमन है, दृष्टि करने वाला तू ही तो है, दृष्टिकी करामात तेरी ही तो है। तू दृष्टि परकी ओर न कर, अपने ही ओर कर तो तुझे रोकने वाला कोई दूसरा तो है ही नही। तू ही समर्थ है दृष्टि किसी ओर कर ले।

विकल्प जैसे होते हैं वैसे ही उपयोगी बना जा रहा है तू। चहकायेमे आ कर स्वप्नको यथार्थ मानकर कहे जा रहा है तू। जरा ठहर तो सही, अन्तरमे देख तो कुछ। विकल्पोका कैसा रग ढग है, ये आ कहाँसे रहे, कैसे आ रहे हैं, कहा हैं? देख तो ले इन्हे, फिर इनकी बाते मानने लगना। पहिले तो जिनका हुक्म मान रहे हो उनकी शकल सूरत तो देख लो।

चलो, लो अब विकल्पोंके दर्शन करने। अरे यह क्या हुआ? जब मैं विकल्पोकी शकल देखने चला तो यहाँ कोई विकल्प ही नजर नही आ रहा था, नजर आया सिर्फ प्रतिभास प्रतिभास। अहो विकल्पोकी ओर दृष्टि लगाने मे भी बडी सावधानी करनी पडती, जिस सावधानीके फलमे कुछ अवगुण ही नजर नही आता, कुछ विकल्प ही नजर नहीं आता।

अरे भाई! क्या अन्धेर मचा रहे हो। इसका पता ही नही करते कि किसका हुक्म है और विना विवेकके हुक्म मानने चले जा रहे हो। अहो भ्रम का नाच ही इस ढगका है कि आगेकी (परकी) ओर मुख करते चले जावो, पीछेकी (निजकी) ओर कुछ पता ही न करो।

३१ अक्तूबर १९६०

हे आत्मन् ! विकल्पोका असहयोग कर दो। अरे भैया ! कैसे असहयोग कर दे, ये तो पुराने बडे यार है, इनकी इज्जत कैसे खतम कर दे ? तो लो, अच्छा सुनो, इनकी इज्जत खतम न करो। जब ये विकल्प सरकार कुछ कहे या करें तो तुम बडी भक्ति विनयसे इन सरकारोका मुख देखने लगो, अपना उपयोग सर्वस्व इन विकल्पोको समर्पित कर दो, किसी भी अन्य पदार्थ की ओर ताको ही नही, इन विकल्पोकी उपासनामे जुट जावो, किसी अन्य पदार्थका ख्याल ही न करो, किसी गैरकी ओर दृष्टि ही न दो। ऐसा करनेसे विकल्पोका अपमान भी न हुआ, प्रत्युत सन्मान ही हुआ, विकल्प शान्त भी होगे। देखो यह क्या कुछ कम भक्ति है कि स्वामी जी को शान्ति पहुचा दे।

१ नवम्बर १९६०

सभी जीव सुख शान्ति चाहते हैं। मगर स्वय तो सुख शान्तिका भडार है और ढूढता फिरता बाहरमे सुख। सच बात तो यह है कि आनन्दका उपाय है अन्तर्दृष्टि और दुखका उपाय है बहिर्दृष्टि। अन्तर्दृष्टि करनेमे कोई कष्ट नही है, सिर्फ ऊधम छोडना है। यदि ऊधम ही न छोडा जाय तो फिर इसका इलाज ही कुछ नही। बाह्य पदार्थ बाह्य है, तुमसे जुदे हैं, उन्हे अपना न मानो तो तुम्हारा क्या बिगड जायगा ? पदार्थ तो जितने है उतन वे है ही, उतने सदा रहेगे ही, वे नष्ट नही होगे और न वे तुममे मिल जायेगे। उन्हे अपना मानो तो तुम्हारे नही होते, अपने न मानो तो तुम्हारे नही होते।

प्रिय आत्मन् ! मनके मत वाले मत बन, मन चाहा ऊधम करना ठीक नही है। तुमने शक्ति पाई उसका सदुपयोग कर, पञ्चेन्द्रिय और मनके विषयो मे लगाकर अपनेको बरबाद मत कर।

२ नवम्बर १९६०

जैसे पालतू बन्दर आगे बढता रहता है पीछेसे बच्चे हो-हल्ला मचाते हैं, बच्चे हो-हल्ला मचाते है इससे बन्दर आगे बढता जाता है। कभी यदि बन्दर

पीछेकी ओर मुडले तो फिर बच्चोंका पता नही पडता। कितने जल्दी बिखर कर भाग जाते हैं। इसी तरह विषयोका पालतू यह मन बाह्य पदार्थोंमें बढता चला जाता है, पीछेसे विकल्प जाल हो-हल्ला मचाते हैं इसमें मन आगे बढता जाता है। कभी यदि मन पीछेकी ओर याने अन्तरकी ओर मुड ले तो फिर विकल्पोका पता नहीं पडता, कितने जल्दी बिखर कर भाग जाते हैं, विलीन हो जाते हैं।

विकल्प करके तू अपनेमें ही परिणमन कर रहा है कि किसी दूसरेमें भी परिणमन कर रहा है? खूब निर्णय कर ले—तू मात्र अपनेमें ही परिणमन कर रहा है। बस, ठीक बात समझ ले, तुझे छुट्टी है जितने चाहे विकल्प कर ले, सिर्फ यह विश्वास रखो कि मैं विकल्प करके अपनेको ही कर रहा हूँ, जो कुछ कर रहा हूँ, परमें तो जरा भी गति नही है, मैं अपने से ही कर रहा हूँ, जो कुछ कर रहा हूँ, किसी परको मैं अपना कुछ बना भी नही सकता। अपना कुछ बनाना तो दूर रहो कोई पर मेरा कुछ कर ही नही सकता, वे पर भी खुद खुदमे कर रहे हैं जो कुछ कर रहे है।

पुद्गल ढेरोंमे भी ये मैं कुछ नही कर सकता, वे अपने परिणमनसे परिणमते है। और, मान लो, परोमें कुछ हो गया विकल्प माफिक, तो भी क्या? पडी तो इस ससुरे मूढको औरोको समझानेकी, सो और वे कुछ मुझे समझ भी नही सकते। विकल्प करना मिथ्या है, अज्ञानता है।

३ नवम्बर १९६०

चरणानुयोगका उपदेश (नुसखा) इस मूढके अनेक रोगोको साहस सरकार द्वारा रजिस्टड एक पेटेन्ट दवा है, करे तो कोई इसका अनुपान।

द्रव्यानुयोगका उपदेश (नुसखा) इस मूढके अनेक रोगोकी विवेक सरकार द्वारा रजिस्टड एक पेटेन्ट दवा है, करे तो कोई इसका अनुपान।

कारणानुयोगका उपदेश (नुसखा) इस मूढके अनेक रोगोकी ज्ञानयोग सरकार द्वारा रजिस्टर्ड एक पेटेन्ट दवा हे, करे तो कोई इसका अनुपान।

प्रथमानुयोगका उपदेश (नुसखा) इस मूढके अनेक रोगोकी कर्तव्यरुचि

सरकार द्वारा रजिस्टर्ड एक पेटेन्ट दवा है, करे तो कोई इसका अनुपान।

प्रथम करण चरण द्रव्य नम ।

४ नवम्बर १६६०

विकल्प करना मिथ्या है, विकल्पके कारण विकल्पकी चाही हुई बात नही होती,। कभी हो भी जावे तो वह विकल्पके कारण नही हुई, उस हो परपदार्थ के कारण उस परकी परिणति हुई, विकल्पके कारण नही हुई। परकी परिणति मन चाही होनेपर भी सुख परपरिणतिके कारण नही होती, विकल्प ही और प्रकारका बना लेनेके कारण वह सुख हुआ जो कि वास्तवमे आकुलतारूप ही है। अत विकलपको मिथ्या, अनर्थकारी, क्लेशकारी जानो और उस विकल्पसे उपेक्षाभाव धारण करो।

मैं निर्नाम, निष्काम, निर्विकल्प, निराकार, निरञ्जन, निश्चल, निर्मल, निर्द्वन्द्व प्रतिभास स्वरूप हू।

मेरा हित मैं ही हूँ, मेरा वैभव मैं ही हूं, मेरा लोक मैं ही हूँ, मेरा परलोक मैं ही हूँ, मरा सारा कुटुम्ब मैं ही हू, मेरा न्यायालय मैं ही हूँ, मेरा न्यायाधीश मैं ही हूँ, मेरा अपराधी मैं ही हू, मेरा कैदी मै ही हूँ। मेरा गुरु मैं ही हूँ, मेरा परमेश्वर मै ही हूँ, मेरा हित मैं ही हूँ।

मेरा नाच दृष्टिमे है, मेरा आनन्द दृष्टिमे है, मेरा भगवान् दृष्टिमे है, मेरा अज्ञान दृष्टिमे है।

५ नवम्बर १६६०

लोकमे ऐसा कुछ भी तो नही जिमे चाहा जाना चाहिये। जड पदार्थ इकट्ठे होगये इससे क्या मिल जावेगा? प्रशसाके शब्द गूज जावे उनसे क्या मिल जावेगा। मन चाहे इन्द्रियविषय मिल जावे इनसे क्या मिल जायगा? और भी क्या चीज है ऐसी जिससे कुछ मेरेको मिल सके।

प्रत्येक पदार्थ अखण्ड और स्वव्यापक है। यही वजह है कि किसी भी पदार्थमे किसी अन्य पदार्थका कुछ परिणमन नही होता। वस्तुका यथाथस्वरूप मेरी दृष्टिमे रहो इसकी चाह भली है, सो चाह क्या, जानना हो गया, लो बस काम होगया। चाहका इसमे सवाल क्या?

६ नवम्बर १९६०

आत्मा ज्ञानमात्र है। ज्ञानभावसे ही ज्ञानभाव पहिचाना जाना जाता है। अत. ज्ञानस्वरूपको विचार करके ज्ञानपरिणमनमात्र जब ज्ञानमे आता है तब आत्माका परिचय होता है। आत्माके यथार्थ परिचयके समय विकल्पोका निरोध हो जाता है, क्योकि उस समय परपदार्थका तो उपयोग रहता नही और पर-पदार्थका उपयोग किये विना विकल्प नही होते।

जिस समय आत्माको ज्ञानमात्र या दर्शनमात्र न देखकर अन्य गुणोके द्वारसे या परिणतिके द्वारसे या प्रदेशविस्तारके द्वारसे समझा जाता है उस समय विकल्पोका निरोध नही होता। इससे यह वात सुनिश्चित हो जाती है कि चेतनाभावके सिवाय अन्य अन्य द्वारोमे समझा गया आत्मा भी पर होगया। जहाँ समझने वाला तत्त्व समझा जानेवाला तत्त्व एक रहता है वहाँ एकता है, अनन्यता है, स्वकीयता है।

७ नवम्बर १९६०

जीवके दुःखके कारण हैं दो— (१) इच्छा, (२) गुस्सा। इच्छा अज्ञान है, क्योकि इच्छा अर्थकारिणी नही है। इच्छा कुछ की जाती है, होता कुछ और है। गुस्सा अज्ञान है, क्यो कि गुस्सा अर्थकारिणी नही है, जिसपर गुस्सा किया जाता है उसका बुरा ही कर दे ऐसी गुस्सामे कला नही है। परच—यदि जैसी इच्छाकी वैसा ही पदार्थका परिणमन होगया तो इससे अपने आपको क्या लाभ हुआ? विकल्पोका द्वन्द्व मचा वह तो हानि है, आत्मामे तो कुछ आता नही है। तथा च—यदि दूसरेका बुरा होगया तो इससे अपने आपको क्या लाभ हुआ? वल्कि दूसरेका बुरा करनेके भावकी मलिनतासे खुदकी वरवादी ही कर ली।

इच्छाये वहुत बहुत की, उनमे ९५ प्रतिशत ऐसी इच्छाये गुजरी जिनके विरुद्ध ही वाते सामने आई, उन उन प्रसङ्गोमे वडी झुझलाहटे हुई, विडम्वनाये हाथ लगी, पछतावा हुआ, विचार आया कि अव एक भी इच्छा न उठने पावे, अव रच भी इच्छा नही करनी। अरे भाई यदि ऐसी दृढ भावना होजावे कि

अब रच भी इच्छा नही करनी, इच्छा सब अधर्म है तो भैया ! सारा जीवन अमृत बन जावे ।

दु,ख तो असलमे एक ही है वह इच्छा । गुस्सा तो बादकी बात है । इच्छा न करनेपर यदि इच्छाके अनुसार बात न बन सके तो गुस्सा आता है । एक इच्छाको वस्तुस्वातन्त्र्यकी दृष्टिके बलसे दूर करो और सुखी होओ ।

८ नवम्बर १९६०

"प्रत्येक वस्तु स्वतन्त्र है, परिपूर्ण है, स्वत सिद्ध है, स्वत परिणमनशील है, सनातन है । मैं भी स्वतन्त्र हू, परिपूर्ण हूँ, स्वत सिद्ध हूँ, स्वत परिणमनशील हूँ, सनातन एव चैतन्य स्वरूप हू ।" ऐसी प्रतीति आये बिना न क्लेश दूर हो सकते और न मुक्तिका मार्ग मिल सकता ।

जगतका जीवलोक अथक परिश्रम करके यही तो चाहता है कि मेरे क्लेश दूर हो, किन्तु क्लेश दूर होनेका उपाय तो करे नहीं, और क्लेश बढानेके उपायोमे ही लगा रहे तो क्या यह आशाकी जा सकती है कि उसके क्लेश दूर हो जावेगे ? नहीं, यह आशा नही की जा सकती ।

आत्मा स्वय आनन्दपूर्ण है, उसकी तो दृष्टि न हो और जिसमे आनन्द ही नही अथवा अपना कोई गुण ही नही उस ओर दृष्टि बनाई जा रही हो तो यह उल्टा ही रास्ता तो नापना हुआ ।

हे आत्मन् ! तू मात्र अपने स्वरूप है, न तो इस स्वरूपमे कभी कोई कमी होती और न कभी कुछ अधिकता होती है । यदि तू विकृत परिणमन करता है तब भी तो अपने स्वरूप रूप है, उसी रूप परिणमता हुआ परिपूर्ण है । ज्ञानबलका प्रयोग करनेसे जब तू स्वभावपरिणमन करेगा तब भी तू अपने स्वरूप रूप है, उसी रूप परिणमता हुआ परिपूर्ण है । तेरे निराले स्वरूपास्तित्व की महिमा जिस योगीको उपलब्ध हो जाती है वही परमयोगी होकर परमात्मा हो जाता है ।

१९ नवम्बर ६०

मैं मात्र चेतनाशक्ति हू । मैं घरवाला हूँ, इज्जतवाला हूँ, परिवारवाला हूँ, धनवाला हू, इन थोथी कल्पनाओमे ज्ञानकी आग लगा ।

मैं मात्र चेतनाशक्ति हूँ। मैं गोरा हूँ, मैं मनुष्य हूँ, मैं पण्डित हूँ, मैं सुखी हूँ, मैं दुखी हू, मैं रागादि करता हुआ जैसा हूँ वही हूँ, इन थोथी कल्पनाओमे शुद्ध वोधकी आग लगा।

मैं मात्र चेतनाशक्ति हू। मै प्रेम करता हू, प्रेमीको सुखी करता हू, विरोधीको दुखी करता हूँ, चतुराई करता हू, जनताको समझाता हू, पब्लिकको मार्ग पर लाता हू, देशकी रक्षा करता हूँ आदि मिथ्या विकल्पोमे शुद्ध दृष्टिकी आग लगा।

होली खेल तो ऐसी खेल—जिसमे चिराभास (भावकलङ्क) स्वाहा हो जाये। राखी मना तो ऐसी मना कि चैतन्य ज्योतिकी रक्षाका सकल्प कर ले। दिवाली मना तो ऐसी मना कि चैतन्यप्रकाश प्रतिसमय शुद्ध विकसित व प्रवृद्ध होता जाये।

आत्मन्! तू विलकुल नग्न है, शुद्ध है, केवल है, ज्ञानानन्दरस निर्भर है।

हे प्रियतम! तू वेअटक है, वेखटक है, कर्मोकी चटकमे न झटक, जगत् के ठठकमे मत भटक, इन्द्रियविषयविष मत गटक, मोहगर्तमे मत पटक, पुण्यके ठाठमे मत मटक, हितके पथसे मत सटक, भ्रमके फदेमे मत लटक, तेरे निकट ही है तेरा सारा कटक, तेरा प्रभु है तेरे ही घटक, अब किसी परकी ओर मत फटक। हे प्रियतम! तू वेअटक है, वेखटक है।

१० नवम्बर १९६०

मैं ज्ञानानन्दस्वरूप हू। मेरा ही ज्ञान मेरेसे ही प्रकट होता है। मेरा ही आनन्द मेरेसे ही प्रकट होता है। किन्तु इस तथ्य का विश्वास न होनेके कारण उल्टा विश्वास होगया है। वह क्या कि मेरा ज्ञान दूसरे किसीसे मिलेगा व मिलता है तथा मेरा आनन्द किसी दूसरे पदार्थसे मिलेगा व मिलता है। इस मिथ्या आशयके पुष्ट होनेका यह साधन भी बन गया कि मोहीकी दृष्टि पर-पदार्थपर वनी है और ज्ञान आनन्द इसका कुछ न कुछ बना ही रहता है, चलता ही रहता है, सो जिस पदार्थपर दृष्टि रखते हुए आनन्द मिला उस पदार्थसे आनन्द मिला, ऐसा भ्रम हो जाता है। वस्तुत तो परपदार्थकी दृष्टि

आनन्दमे बाधक ही है।

यदि किसी भी परपदार्थकी दृष्टि न रखी जाय तो आनन्द परिपूर्ण प्रकट हो जाय। परकी ओर दृष्टि करना तो आनन्दमे बाधा डालना है, परन्तु मोही जीव मानता है उल्टा अर्थात् मोही मोहीजीव परपदार्थसे आनन्द मानता है और इसी कारण परपदार्थकी दृष्टि बनाये रहता है। हाय! अज्ञान ही महान् क्लेश है।

११ नवम्बर १९६०

हे आत्मन्! यह निरन्तर ध्यान रखनेका यत्न करो कि अनात्मतत्त्वमे "मैं" की प्रतीति न हो जाय। सर्व क्लेशोका मूल परपदार्थमे "मैं" की बुद्धि हो जाना है। एक यह सावधानी हो जाय फिर कुछ डर नही है।

देखो—आत्मा ज्ञानस्वभाव है। इस आत्माकी विकार अवस्थामे भी कोई पापका यत्न होता है तो वहा भी अन्तरसे एक बार तो आवाज निकल ही बैठती है कि पाप मत करो। यह क्या बात है? यह ज्ञान व अज्ञानका अन्तर्द्वन्द्व है अथवा जैसे सूर्यके नीचे बादल आजायें तो यहाँ कुछ अन्धेरा और कुछ उजेला रहता है, इसी तरह ज्ञाननिधि आत्माके ऊपर कर्मका आवरण आ गया तो भी देखो कुछ अंधेरा है और कुछ उजेला है अर्थात् कुछ पापकी वृत्ति चलती, कुछ विवेककी ज्योति जगती। हा, उपयोग क्रमसे चलता है सो कभी पापवृत्ति चलती, कभी विवेक ज्योति जगती, कभी ऐसा लगता कि पापवृत्ति और विवेक ज्योति दोनो एक साथ उठ रही है सो यह उपयोगकी सत्वरगतिका परिणाम है, अथवा पापवृत्ति व विवेक ज्योति दोनोका होना भी एक साथ पाया जा सकता है क्योकि पापवृत्ति चारित्र गुणका परिणाम है व विवेक (ज्ञान) ज्योति व ज्ञान गुणका परिणाम है।

१२ नवम्बर १९६०

जो भी समागम मुझे मिला है वह सब मेरी बरबादीके लिये है, जिस भी परपदार्थमे मेरा चित्त है वह मेरी बरबादीके लिये है। हा, कभी यह हो जाता है कि बडी बरबादीका निमित्तभूत समागम न मिला, अन्य समागम मिला तो

मामूली वरवादी हुई। इस मामूली वरवादी के कारणभूत समागममें यह उपचार भी किया जा सकता कि यह समागम मेरी आवादीके लिये है। वस्तुत मेरी आवादीके लिये अणुमात्र भी परवस्तुकी अपेक्षा नही होगी। अपेक्षा लेकर जो काम होगा वह वरवादीके लिये ही होगा।

१३ नवम्बर १९६०

मोहका छूटना सरल है क्योकि मोह वस्तुस्वरूपके सम्यक् ज्ञानके वलमे छूट ही जाता है। वस्तुका स्वरूप स्वतन्त्र स्वतन्त्र है। प्रत्येक वस्तु अपने स्वभाव सर्वस्वको ही लिये हुए है। किसी भी वस्तुका किसी अन्य वस्तुके साथ रंच भी सम्बन्ध नही है। इस प्रकार पृथक् पृथक् सर्व पदार्थोंके स्वरूपको समझ ले तो मोह ठहर नही सकता।

रागका छूटना कठिन है क्योकि वस्तुस्वरूपके सम्यक् ज्ञान कर लेनेपर भी राग रहता है। किन्तु, चिन्ता की वात तनिक भी नही है, क्योकि मोह हटनेके बाद रागको मिटना ही पडेगा।

जैसे वृक्षको जडसे गिरा देना सरल है, हाथकी वात है, परिश्रम करके खोद दिया, लो जड उखड गई। किन्तु, वृक्षके पत्ते हरे न रहकर विल्कुल सूख जावे यह आदमीके हाथ वात नही (यहा जला देनेकी वात नही कर रहे हैं)। यह तो नियम अवश्य है कि वृक्षकी जड मिट जानेपर पत्तोको सूखना ही पडेगा, पर वे सूखेंगे समयपर।

१४ नवम्बर १९६०

किसी भी अन्य जीवसे स्नेह करना आपत्ति ही है। स्नेह तव आपत्ति नही जव कि स्नेहक जैसा चाहे वैसा स्निह्यका परिणमन हो। किन्तु ऐसा हो ही नही सकता क्योकि सव जीव पृथक् पृथक् द्रव्य है, सव ही अपनी शक्तिसे अपनी अपनी योग्यता, भावना, वासना के अनुसार परिणमते हैं। कदाचित कुछ कुछ ऐसा भी हो जाये कि स्नेहकके आशयके अनुसार स्निह्यका परिणमन हो गया तो वह कितने समयकी वात है, कुछ क्षणोकी वात है, वादमे इतना कुछ भी इष्ट नही रहता। इच्छा, स्नेह करनेवाले नियमसे दुःख ही पाते हैं।

मोही जीवकी दशा इससे भी अधिक शोचनीय है—वह स्नेहसे होनेवाले दुखका उपाय मात्र स्नेह ही समझता है। अत वह स्नेह परिणामके प्रति भी यही भावना रखता है कि यह स्नेह सदा तक बना रहो और स्नेहके विषयभूत पदार्थोंके प्रति भी यही भावना करता है कि ये पदार्थ सदा काल तक रहो। इस बुद्धिसे उनका क्लेश अनन्तगुणा बढ जाता है।

१५ नवम्बर १९६०

परपदार्थकी कल्पनामे ही जीवन खो दोगे तो हे आत्मन्! बतावो क्या कुशलता रही? अहा! बडी परेशानी है इसे, क्या कहे? कर्मोका विपाक कहे या आत्माकी खुदकी अज्ञानता व कमजोरी। अच्छा दोनो बातें कह लो। किन्तु, छुटकारे की बात कैसे बनेगी सो तो बतावो। उसका तो उपाय सिर्फ वस्तुस्वरूपका यथाथ ज्ञान है, स्वपरका भेदविज्ञान है, केवल आत्मतत्त्वका उपयोग है। यह काम तो खुदके करनेसे ही बनेगा। कर्मोकी ओर या कर्मविपाककी ओर क्या देखे, इससे होता क्या व इसकी खबर भी क्या?

सब पदार्थोंसे न्यारा, सब पदार्थोंमे सारभूत एक निज सहज स्वभावको देखो। इस ही मे सर्वकल्याण है।

१६ नवम्बर १९६०

जो निरन्तर आत्मस्वरूपका चिन्तन करते है वे पुरुष ज्ञानी हैं। आत्माका स्वरूप ज्ञानघन आनन्दमय है। इसके स्वरूपमे रच भी क्लेश नही। जो जीव अपने आनन्दमय स्वभावको भूलकर परभावमे रत रहता है, वह आकुलित रहता है और जो जीव स्वपर सब पदार्थो के स्वरूपका यथार्थ बोध करके सहज होने वाली उपेक्षाके परिणाममे उपलब्ध सहज ज्योतिके दर्शनसे सहज आनन्द पाकर सतुष्ट हुए है, वे अनाकुल रहते हैं।

जीवका रक्षक धर्म ही है। अन्य कुछ भी तत्त्व जीवकी रक्षा करनमे रच भी अधिकार नही रखते। जिस जीवको सुखी होना हो वह धर्मकी रुचि व प्राप्ति करे। जिस जीवको ससारके जन्म मरण पाकर आकुलतामे ही रहना है वह धर्मकी रुचि न करके मोह, विषय व कषायोमे लीन रहा करे।

सुख, दुःख व आनन्द पाना इस जीवके भावके आधीन है, अन्य किसीके आधीन नहीं।

१७ नवम्बर १९६०

संसारमें सुख होता तो तीर्थङ्कर जैसे महापुरुष ज्ञानी जीव संसारके आराम तजकर आत्मसाधनामें क्यों लगते हैं? आखिर सुख ही तो सर्वोपरि ध्येय है जीवका। आखिर सुख ही तो चाहिये इस जीवको।

आकुलताके साधन ही इस जीवको सुखरूप मालूम होते हैं मोहमें। यह ही सबसे महती विडम्बना है। गलत चलते हुए भी अपनेको सही समझनेवाला महामूढ है।

शान्ति और आनन्द अपने आपमें ही है। अन्य पदार्थों पर दृष्टि न करो, अपने आपके आत्मस्वरूपपर ही दृष्टि करो, आनन्द ही आनन्द विकसित होगा। मेरे प्रियतम स्वयं प्रभो! परेशान मत होओ, तुम तो स्वयं आनन्दसे परिपूर्ण हो, बाह्य पदार्थकी दृष्टि करके अपने आनन्दमें ही कमी कर लेते हो। अब बाह्य अर्थके उपयोग करनेकी कुटेव छोड़ो।

१८ नवम्बर १९६०

यह मैं आत्मा स्वयं स्वतः ज्ञान व आनन्दसे निर्भर हूं, ज्ञान और आनन्द इसका स्वरूप ही है। ज्ञान व आनन्दकी कमी तो रहना ही नहीं चाहिये, किन्तु ज्ञान व आनन्दकी कमी दुनियाके जीवोंमें देखी जा रही है वह सब निज ज्ञानानन्दस्वरूपकी प्रतीति न होनेका फल है। कोई मूढ प्राणी ऐसी प्रतीति लिये रहे कि मुझमें ज्ञान व आनन्द अमुक-अमुक चीजसे आता है, इस प्रकार परपदार्थसे ज्ञान व आनन्द होनेकी श्रद्धा रखे तो ज्ञान आनन्दकी इनमें कमी हो जाना स्वाभाविक बात ही है।

मूढ जीवोंको इतनी प्रतीतियोंके रोग लगे हैं—

(१) मुझे ज्ञान गुरुसे या पुस्तकादिसे मिलेगा।

(२) मुझे आनन्द भोजन, धन, कुटुम्बादिसे मिलेगा।

(३) मैं मकान दुकान राज काज आदि कर सकता हूँ।

(४) लोग सन्मान अपमान करके मुझे सुखी दुखी किया करते हैं।

(५) मैं दूसरोको सुखी दुखी कर सकता हूँ।

(६) यह गोरा काला, ठिगना लम्बा आदि जो कुछ हे सो मैं हूँ।

(७) ये कुटुम्बी मित्र रिश्तेदार आदि मेरे हे, मैं इनका हू।

(८) दुनियाके लोग मेरी इज्जत करे तो मैं सब कुछ हू, ये इज्जत न करे तो मैं न कुछ हूँ।

इस प्रकारके अनेक रोग है, उन सब रोगोकी औषधि एक है वह है सहज आत्मस्वभावका दर्शन।

१९ नवम्बर १९६०

यह ससार एक गहन वन है। इसमे भूला प्राणी ऐसा भटका करता है कि जिसमे आकुलता ही आकुलता हस्तगत होती है। जन्म मरणके राक्षस आगे-पीछे निरन्तर चल रहे है। आहार भय मैथुन परिग्रह— ये चार सज्ञारूपी ४ दैत्य इसको चारो ओरसे घेरे हुए है। क्षुधा, तृषा, चिन्ता, प्रेम, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, इन्द्रिय विषयभोग, ख्यातिचाह आदि सैकडो रोग इसे सता रहे हैं। कीडा-मकोडा, पशु-पक्षी, पेड आदि नानाभाव धारणके रूपमे अद्भुत अद्भुत विकृतता इसे पीस रही है। पराश्रित औपाधिक आनन्दाभासकी मग्नता इसे अन्धा बनाकर बरबाद कर देती है। इच्छानुकूल वस्तु या समागम न मिलनेसे होने वाला सताप, दाह, सक्लेश इसे झुलसाये जा रहा है।

इन सब आपदाओसे छुटकारा पानेका उपाय स्वाधीनता एव सरल है। वह उपाय है अपने सहज चित्स्वभावकी दृष्टि करना।

२० नवम्बर १९६०

प्रत्येक पदार्थ स्वय-स्वयके तन्त्र है। इसका कारण यह है कि जो भी सत् है वह स्वत ही सत् है। सत् परिणमनशील ही होता है जो परिणमनशील नही, वह सत् नही। प्रत्येक सत् अपना एक असाधारण स्वभाव रखता है। उस स्वभावका परिचय द्रव्य, प्रदेश, गुण या पर्यायकी दृष्टिमे नही होता है किन्तु असाधारण अभेद-भावकी दृष्टिसे स्वभावका परिचय होता है इसी कारण स्वभावको अपरिणामी कहा

है। किन्तु कोई इस दृष्टिसे परखे गये स्वभावकी अपरिणामिताको किसी सत् मे या गुणादिमे सर्वथा मान ही बैठे तो वस्तुत्वदृष्टिसे पतित हो गया समझिये।

पदार्थ परिज्ञानके लिये बुद्धि स्वस्थ चाहिये। बुद्धिकी स्वस्थता स्याद्वाद का आश्रय करनेके पश्चात् ही हो सकती है। स्याद्वादके बलमे वस्तुका सर्वतोमुखी ज्ञान किये विना जो भी धाराणा बनाई जायगी, कुछ ही समय बाद उस मे सन्देह उत्पन्न होगा। स्याद्वाद बलसे वस्तुका सर्वतोमुखी परिज्ञान कर लेने के पश्चात् किसी भी हितकारी दृष्टिकी भावना की जायगी तो उससे ही लाभ उठाया जा सकेगा, क्योकि वह सन्देहके भूलेमे तो भूलेगा नही और नि शङ्क हितकारी दृष्टिका अवलम्बन करेगा वह।

सम्यग्ज्ञान ही जीवकी रक्षा करने वाला है।

२१ नवम्बर १९६०

मै स्वय क्या हू ? चेतनाशक्तिमात्र हूँ। चूकि सत् परिणमनशील होते हैं, मैं भी सत् हूँ, परिणमनशील हू। अत प्रति समय वर्तना किया करता हूँ अर्थात् मान अर्थपर्यायसे परिणमता रहता हू। अर्थपर्यायसे परिणमते हुए इस औपाधिक परिणमन व्यक्त होते चले आ रहे है। इस परिणमनको यह अर्थपर्याय अगेज कर स्वयको तिरोहित कर लेती है, कर लो, फिर भी बात यह सत्य है कि औपाधिक व्यञ्जना मेरी स्वभावकला नही, सामर्थ्य तो ऐसी मेरेमे है किन्तु वह स्वभावकला नही।

अहा ! मै चेतनाशक्तिमात्र एक सत् हू, इसको अन्य सब कोई नही जानता। जो जानता वह मेरा परम मित्र है। अहो ! मैं तो शुद्ध केवल हूँ, जो इस पर विडम्बना खडी हो गई वह अमौलिक है, असार है। जो ये चलते फिरते सजीव चित्र दिखाई देते है वे भी अमौलिक हैं, असार है। इन असारोमे प्रशसा की अभिलाषा करना अत्यन्त असार हैं। इन असारोके द्वारा की जाने वाली निन्दा के शब्द या अक्षरोम कुछ भय लाना अत्यन्त मूर्खता है। इन असमानजातीय पर्यायोमे ही क्या सार है ? ये सब मर्त्य है, मर मिटने वाले हैं। जब ये सब

नि.सार हैं तो इनके फैसलेमे भी सार क्या है ? इन औपाधिक अन्तरोको दृष्टि न करके हे आत्मन् ! तुम तो सर्वत्र ध्रुव सत्य चित् तत्त्व ही देखो और अपने क्षण सफल करो।

२२ नवम्बर १६६०

मैं चैतन्यभावमात्र हू, चिद् वस्तु हूँ, चेतन सत् हूँ, मैं स्वभावमे परिवर्तन न कर अस्तित्वकी प्रतिष्ठा की प्रयोजकताको लेकर स्वयके स्वभावमे आकाश द्रव्यवत् सूक्ष्मतया परिणमते रहने वाला आत्म द्रव्य हूँ। इस मुझमे जितनी भी विशेषतायें उठती है वे सब औपाधिक हैं। उन्हे न तो उपाधिकी ही कह सकते हैं और न आत्मद्रव्यकी ही कह सकते है। इस कारण वे सब विशेषतायें माया हैं। माया पर लट्टू होना मूर्खता है।

दृष्टि द्वारा जो मायासे परे है वह अन्तरात्मा है, जो सर्वथा मायासे परे है वह परमात्मा है।

अकेलेपनमे सन्तोषका आ जाना ही सच्ची तरक्की है, सच्ची तरक्की क्या, तरक्की ही यही है। सबसे बड़ा वह है जो कि केवल खुदही रह गया है। देखो पुद्गलोमे सबसे बडा वह है जो केवल खुद एक ही रह गया है. तभी तो मोटी चीजोसे अधिक शक्ति एटम बममे है। एटम बमसे अधिक और छोटे स्कन्धमे है। सबसे अधिक शक्ति एक परमाणुमे है तो तो अकेला परमाणु एक समयमे १४ राजू गमन करनेकी शक्ति रखता है। आत्माके बारेमे भी यही हाल है। यह आत्मा केवल रह जाय तो सबसे बड़ा है। मुनि, अरहन्त, सिद्ध इसी केवलताके कारण बडे है। सबसे बडे सिद्ध है क्योंकि वे सर्वथा केवल हो गये हैं। अरहन्त भी केवल ही है क्योंकि जो अन्य (शरीर व अघातिया कर्म) का सयोग है उससे उनके आनन्दमे कोई बाधा नही है।

२३ नवम्बर १६६०

परमार्थ दृष्टिसे देखा गया स्वय ही स्वयका शरण है। इस परमार्थ दर्शन के लिये बाह्य पदार्थोकी उपेक्षा कर देनेकी हिम्मत चाहिये और इस हिम्मतके लिये केवल शुद्ध आत्मा स्वरूपका ज्ञान व ध्यान चाहिये।

मैं चैतन्य शक्तिमात्र हूँ, विशेष अथवा तरगें औपाधिक माया है वह सब मैं नही हूँ, यह प्रतीति ही अमृत है। ज्ञायकस्वभावमय आत्मतत्त्वको अन्य-अन्य रूप मानना सो ही विष है।

एक भी परमाणुमात्र तक का भी राग न रहे सर्व अनात्मतत्त्वके विकल्प से दूर रहे, यही परमहित है, परमहित मार्ग है। ऐसा साहस एक बार भी कर ले फिर आनन्द ही आनन्द है, क्योकि आत्मानुभव होने पर अन्य कुछ सुहाता ही नही, दुख कहासे हो? दुख तो परवस्तुओके सुहा जानेसे हुआ करता है। परवस्तु सुहाये ही नही फिर वस्तुके असमागममे भी क्या दुख है? दुख तो वह है कि परवस्तु सुहाये और मिले नही या जैसा चाहे वैसा होवे नही।

इच्छा ही विपदा है इसका विनाश सम्यग्ज्ञानसे होता है। सम्यग्ज्ञान वस्तुके वास्तविक सत्त्वके परिचयसे होता है। अत एतदर्थ वस्तुविज्ञानके अर्जनका उद्योग करना एक महान् कर्तव्य है।

२४ नवम्बर १९६०

मैं व्यवहारी नही हूँ, जो कुछ बोले चाले या जिसे कोई कुछ बोले चाले। परन्तु उपाधिके निमित्तसे यह मैं व्यवहारी बन रहा हूँ और अच्छा खोटा नाना प्रकारका व्यवहार कर रहा हू। हाय! अपने उपयोगको छोडकर परतत्त्वके उपयोगमे तो अधेरा ही अधेरा है, किन्तु यह मूढ जीव उस अधेरेमे अपना उजाला, विकास, उद्धार, हित मानता है और मानता भी इस प्रतीतिके साथ कि मैं ठीक चतुराई या बुद्धिमानीके साथ ठीक-ठीक सब कर रहा हूँ।

यह भगवान् आत्मा ज्ञानानन्दस्वभाव है, लोकोत्तम वैभववाला है। देखो तो इस भगवान्की लीला कि जिस जातिका भाव करता है उस जातिकी ही सृष्टि बना लेता है। इस सृष्टिका कारण यह भगवान् उपादान कारण है या निमित्त कारण, ऐसा प्रश्न हो तो उसका समाधान यह है कि यह सृष्टि भाव-रूप व द्रव्यरूप है सो सृष्टिगत भावरूप अशोका देखने पर तो यह भगवान् उपादान कारण है और द्रव्यरूप अशोको देखने पर यह भगवान् निमित्त कारण है।

यह भगवान् आत्मा अपनेको जैसा मानता है वैसा ही इससे व्यवहार बनता है। यदि यह अपनेको बाप मानता है तो बेटोकी खुशामद करता है, अपनेको मनुष्य मानता है तो इन्सानियतका नाता जोड लेनेसे सभ्यता व सेवा का नाटक करता है। यदि अपनेको यह चित्स्वभावमात्र मानने लगे तो यह ज्ञाता द्रष्टा हो जावेगा।

२५ नवम्बर १९६०

हे शान्तिनिधान आत्मदेव ! तुम तो सहज ही आनन्दमय हो, अब तो केवल यही काम करना है व्यक्त दुःख मेटनेको। क्या ? यह कि स्वातिरिक्त सर्व पदार्थ पर है, अहित हैं उनकी आशा मत करो, उनकी ओर मत झुको, अपनेमे ही रत होओ, अपनेमे ही तृप्त होओ, अपनेमे ही सतुष्ट होओ। तेरा सब कुछ तुझमे ही है।

अरे प्रियतम ! ३४३ घन राज प्रमाण दुनियामे परिचित हजार दो हजार मीलका क्षेत्र क्या कीमत रखता है ? उस तुच्छ क्षेत्रके व्यामोहमे अपना ही सर्वस्व खो दिया जाना क्या अज्ञता नही है ? यहाँ क्या सार है, क्या अपना है ? यहाँ अपना कुछ समझना महती मूर्खता है।

अरे वल्लभ ! अनादि अनन्त कालके मध्य २०—२५ वर्ष का काल क्या कीमत रखता है ? इतना ही करोड कोडाकोडी वर्ष भी क्या कीमत रखता है ? इस तुच्छ कालके व्यक्तित्वके व्यामोहमे, अपना ही सर्वस्व के व्यामोहमे अपना ही सर्वस्व खो दिया जाना क्या मूढता नही है ? अरे यहाँ क्या अपना है, क्या हित है ? यहाँ अपना कुछ समझ लेना महती अज्ञता है।

अरे स्वामिन् ! अनन्तानन्त जीवोके मध्य हजार लाख जनोका समुदाय क्या कीमत रखता है ? तेरा लौकिक महत्त्व यदि सब जीव जान सके तो उसके लिये यत्न कर। इन तुच्छ असमान जातीय द्रव्यपर्यायोसे तू क्या आशा करता है ? इनसे तुझे कुछ लाभ नही है। तू तो अपने ही स्वको पहिचान, उसीका स्वामी बन।

२६ नवम्बर १९६०

हूँ और परिणमता हूं। परिणमता हूँ अपने हूं की सीमामे ही हूँ और परिणमता हूँ इतना ही तो वास्ता है। अन्य कोई इसमे क्या करे? मैं अन्य किसीमे क्या करू? हू, एक वस्तु, चिद् वस्तु हू, जैसे कि अन्य वस्तु हैं, चिद् वस्तु हैं। मैं ही अलगमे क्या खास हूँ, यह भी एक वस्तु है। इस मेरेका कोई नाम नही, कुछ खासियत नही। यह तो मैं हूँ और परिणमता हूँ, इतना ही तो वास्ता है।

कोई भी लोग इस मेरेको न पुकारते हैं, न कुछ कहते हैं, न कुछ करते हैं। यहाँ तक कि वे जानते भी नही हैं। वे यदि कुछ करते हैं तो अपना कषाय-चेष्टन ही तो करते है, अल्पज्ञान ही तो करते हैं, अज्ञानका काम ही तो करते हैं। उनकी परिणतिमे मेरा न लाभ है न हानि है। मैं तो अपनेमे ही हूँ, अपनेमे ही रहूँगा।

मैं स्वत ही आनन्दमय हू, मेरेमे स्वयमे कोई क्लेश सक्लेश नही है। क्लेश सक्लेश हुआ यह तो औपाधिक है, होता है वह भी ज्ञानमे ज्ञेय होता है। हा उसे स्वरूप मान लू तो अनन्त दुख होगा। मैं चित्स्वभाव हूँ।

ॐ शुद्ध चिदस्मि।

२७ नवम्बर १९६०

जैसे यहा कोई मकानको स्वीकार करता है, उस पर अधिकार रखता है, उसे अपना मानता है, उसकी सभाल करता है। उसके प्रति लोग कहते है कि यह इसका मकान है और जो मकानको स्वीकार नही करता है उस पर अधिकार नही रखता है, उसे अपना नही मानता है उसकी सभाल नही करता है तो लोक उसके प्रति कहते हैं यह इसका मकान नही है अथवा लोग नही कहते है कि यह इसका मकान है। इस ही प्रकार जो जीव राग, द्वेष, मोहको स्वीकार करता है, उस पर अपना अधिकार रखता है, उसे अपना मानता है उसकी, है उसकी सभाल करता है उसके प्रति यह कहा जायगा कि इस जीवके राग, द्वेष, मोह हैं। वस्तुत जीवमे राग, द्वेष, मोह स्वरसत उत्पन्न नही होते, अन

जीवके नही है। फिर भी यह जीव उन्हे अपने समझता है सो यह जीव अज्ञानी है। इस कारण यह बात सिद्ध हुई कि अज्ञानी जीवके राग, द्वेष, मोह है और जो जीव राग, द्वेष, मोहको स्वीकार नही करता उस पर अधिकार नही करता, उसे अपना नही मानता उसकी सभाल नही करता उसके प्रति यह कहा जायगा कि इस जीवके राग, द्वेष, मोह नही हैं। यह जीव यथार्थ सहज स्वरूपका द्रष्टा है। इस कारण यह सिद्ध हुआ कि ज्ञानी जीवके राग, द्वेष, मोह नही है।

२८ नवम्बर १९६०

जीवकी अशुद्धता दो रूपोमे विभक्त है— (१) विक्रिया, (२) क्रिया। विक्रियाका सम्बन्ध उपयोगमे है, क्रियाका सम्बन्ध योगसे है। उपयोग तीन प्रकारकी हो गई—(१) मिथ्यात्व, (२) अज्ञान, (३) अविरति इस तरह अशुद्धता ४ प्रकारकी हो गई—(१) मिथ्यातत्व, (२) अज्ञान, (३) अविरति और (४) योग। इस तरह ये चार कर्मबन्ध अथवा अन्य परकी परिणतिमे निमित्त हैं। आत्मवस्तु कर्मबन्ध व घटपटादि परिणतिमे निमित्त नही है।

यहाँ उपयोगसे मतलब ज्ञान दर्शनका नही है, किन्तु उपयोग होने, (USING) काममे आने, व्यवहारमे आने, प्रकटरूपमे आने आदिसे मतलब है।

उक्त तीनो प्रकारका उपयोग अज्ञान है, ज्ञानस्वरूपसे भिन्न परिणाम है। योग भी अज्ञानभाव है, ज्ञानस्वरूपसे भिन्न परिणाम है। अज्ञानसे कर्मका आस्रव है व ज्ञानसे कर्मका निरोध है।

ज्ञानस्वरूपका आश्रय ही सत्य शरण है।

२९ नवम्बर १९६०

आत्मस्वभावाश्रय ही एकमात्र उत्तम पुरुषार्थ है। यह पुरुषार्थ स्वाधीन, परायेपेक्षारहित, सुगम और अमोघ है। किसी भी नयकी बात जानें चूंकि सुनयों का प्रयोजन स्वरूप पर पहिचाना है और अध्यात्ममें प्रयोजन चैतन्य स्वभाव पर पहुचानेका उद्देश्य है। अत प्रत्येक नयको जानकर आत्मस्वभाव पर पहुचे तो नयका जानना कार्यकारी है अन्यथा बेकार है।

नयोके अध्यात्ममे ये प्रकार हैं— (१) परमशुद्ध निश्चयनय, (२) सूक्ष्मशुद्ध निश्चयनय, (३) विवक्षितैक देशशुद्धनिश्चयनय, (४) शुद्ध निश्चयनय, (५) अशुद्ध निश्चयनय, (६) व्यवहारनय, (७) उपचारनय।

परमशुद्धनिश्चयनय— सीधा साक्षात् आत्मस्वभाव पर पहुचता है। सूक्ष्म शुद्धनिश्चयनयमे रागादिक है ही नही, ऐसी दृष्टि करा कर आत्मस्वभाव पर पहुँचना होता है। विवक्षितैकदेशशुद्ध निश्चयनयमे जीवको केवल शुद्ध दिखा कर व रागादिका स्वामी पुद्गलको बताकर आत्मस्वभावमे पहुचना होता है। शुद्धनिश्चयनय शुद्ध जीवके शुद्धविकासके साथ कारकता तन्मयता दिखाकर आत्मस्वभाव पर पहुचाता है। अशुद्धनिश्चनय अशुद्धजीवके अशुद्ध भावका उस जीवके साथ कारकता दिखाकर आश्रय निमित्तकी दृष्टि हटाकर केवल जीवको दिखाता हुआ आत्मस्वभाव पर पहुचाता है। व्यवहारनय रागादिक को परनिमित्तक दिखाकर उसे उपेक्षा करनेके प्रेरणा दिलाकर आत्मस्वभाव पर पहुचाता है। उपचारनय गृह आदि परपदार्थोके सम्बन्धको प्रकट झूठ दरसाता हुआ आत्मस्वभाव पर पहुँचाता है।

३० नवम्बर १९६०

इस लोकमे महान् पुरुष तीन प्रकारसे कहे जाते हैं— (१) जो महान् पुरुषसे पैदा होते हैं, (२) जो अपनी साधनासे महान् बनते हैं, (३) जिन पर किसी निकटताके कारण महान् पुरुषपनेकी बात थोप दी जाती है। इनमे से मध्य प्रकारके पुरुष ही वास्तवमे महान् हैं।

इस जीवमे कषाय नाना प्रकारके हैं। वे सब औपाधिक है, जीवके स्वभाव नही है। वह सब विभावमे नही है। मै तो चैतन्य स्वरूपमात्र हू। जो मै हू वह अदृश्य हूँ, जो दृश्य है वह मै नही हूँ और भी जो दृश्य है, वह भी सब अचेतन है यह दृश्य भी अचेतन है। इस अचेतन तत्त्वको अपनानेसे ही जीव सकटमे पडा है। जीवका स्वरूप तो जगमग है अर्थात् ज्ञानानन्दभव है। इस केवल सहज स्वरूपकी भावना ही समस्त सकटोको दूर कर देनेमे समर्थ है।

अहो निजनाथ ! तुम दृष्टिमे सदा विराजे तो रहो, तुम ही सत्यशरण हो, लोकोत्तर हो, एक मात्र सर्वस्व हो। जितने भी जीव शुद्ध हुए है वे स तुम्हारी आराधनासे ही शुद्ध हुए है। शुद्ध होनेका सुगम अर्थ है कि पूर्ण ज्ञानम व पूर्ण आनन्दमय हुए है।

१ दिसम्बर १९६०

इस लोकमे जीव अपने-अपने कमके उदयसे ही सुखी दु खी होते हैं। व कर्म अपने-अपने परिणामसे ही उपार्जित किया जाता है। अत जिन्हे सुख होना मन्जूर ह, वे शुभ परिणाम उत्पन्न करे और जिन्हे दु खी होना मन्जूर वे अशुभ परिणाम उत्पन्न करे तथा जिन्हे न सुखी होना मन्जूर है और न दु ख होना मन्जूर हे वे शुभ अशुभ दोनो परिणामोसे परे केवल शुद्ध ज्ञाता द्रष्ट माञ रहे।

अपनी रक्षा इसीमे है कि सर्वविविक्त निज सहज स्वरूपकी ज्ञप्ति, दृष्टि प्रतीति व आश्रय करे। अन्य कोई दूसरा प्रकार ऐसा नही है जिसमे मेरी रक्ष हो सके याने संसारसे परे हम हो सके।

ज्ञानानन्दरस निर्भर परमात्म तत्त्वकी एक आन्तरिक नजरमे वह सामर्थ्य है कि भव-भवके बाँधे कर्म भी शीघ्र समाप्त हो जाते है। कर्म शत्रुके विनाश का साधन न कोई अस्त्र है न कोई शस्त्र हे। मात्र ज्ञानानन्दरस निर्भर निज परमात्मतत्त्वकी दृष्टि ही कर्मशत्रुके ध्वसका एक साधन ह। अपने परिणाम की सावधानी ही सच्ची सावधानी है। इस ही से परम कल्याण है।

२ दिसम्बर १९६०

मनुष्यभव पाया, समागम पाया, सभी बाते तो ये नष्ट हो जावेगी या वियुक्त हो जावेगी। तब क्यो न ऐसी उदारता की जावे जिससे इन पदार्थो मोह न रहे और इनसे लोगोका उपकार भी हो। बाह्य पदार्थोका समागम हमारी इच्छाके आधीन नही है किन्तु पुण्य प्रकृतिके आधीन है। उदारता पुण्य प्रकृतिका ह्रास नही होता किन्तु वृद्धि ही होती है। तब उदारतासे स लाभ ही लाभ हुए ना। उदारतासे देखो न तो पुण्य कम होता, न प्रसन्नत

कम होती, न वाह्य पदार्थ कम होते, न कीर्ति कम होती। उदारतामे हानिकी तो सभावना ही नही, परन्तु जिसमे अन्तरङ्गमे तो उदारता है नहीं और उदारताका स्वाङ्ग रचे तो दिखावट वनावटमे तो यथार्थ काम कैसे चल सकता है ? पहिले अन्तरमे यथार्थ प्रतीति करो कि सव परपदार्थ मेरेसे भिन्न हैं, इनका सयोग पुण्यप्रकृतिके उदयसे मिला है, इनका त्याग करनेसे पुण्य प्रकृति घटती नही वल्कि वढती है, उदारताके भाव होनेपर यदि कभी पुण्य प्रकृति मिटेगी तो पाप प्रकृतिको मेटती हुई मिटेगी, तव न पुण्य रहा न पाप, फिर तो अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द व अनन्त शक्ति रूप अनुपम अलौकिक वैभव प्रकट होगा।

अहो उदारता उत्थानका मूल उपाय है।

३ दिसम्वर १९६०

स्वभावका दर्शन हो चुका तव नयोका डर नही। किसी भी नयके रास्तेसे गुजर कर स्वभावधामपर पहुच सकते हैं। निजचित्स्वभावकी उपासना ही सर्वसार है। यह न कर सके तो जीवन वेकार है। यह कर लिया तो निश्चित उद्धार है। न तो इसमे जरा भी रार है और न इसमे जरा भी भार है।

यहाँ किसी भी प्रसगको लेकर लोगोमे यश फैलानेकी कल्पना करना महती याने अव्वल दर्जेकी मूर्खता है। हे आत्माराम ! तेरा तेरे सिवाय अन्यसे क्या ताल्लुक है ? रच भी तो परपदार्थसे तेरा सम्बन्ध नही है और तू माने उन पर-को अपना सर्वस्व तो वता इससे वडा रोग और कौनसा होगा व इसकी चिकित्सा भी कौन करेगा ?

तू अपने आपको देख, तू अपने आपको जान, तू अपने आपमे रत रह। इतना ही तो तेरा कर्तव्य है बाकी सव अन्धकार है। कितने ही हाथ पैर पीट ले, कितना ही कुछ उद्यम करले वाहर, अन्तमे तुझे इसी आभ्यन्तर स्वच्छ मार्गपर चलनेमे ही आनन्द मिलेगा।

ॐ तत् सत्। ॐ शुद्ध चिदस्मि।

४ दिसम्बर १६६०

जगत्में ऐसा कोई पद नहीं है जहाँ शान्ति हो। दरिद्र धनीको देखकर सोचता है कि यह तो बहुत सुखी है किन्तु धनी स्वय कितना व्याकुल है इसको तो धनियोसे ही पूछ लो। साधारण लोग नेताको देखकर सोचा करते हैं कि यह तो बहुत सुखी होगा किन्तु वह कितनी बाधाओमे विकल्पोमे पिसा जा रहा है इसकी वेदना तो नेताको ही है, इस बातको और कोई क्या जाने ? बिना पढे लिखे लोग पढो लिखोको देखकर सोचते होगे कि ये पढे लिखे लोग बहुत सुखी रहा करते होगे, किन्तु पढे लिखोकी पढे लिखोमे जो चर्चा होती है, जो वृत्ति प्रवृत्ति होती है उससे पढे लिखे लोग पढे लिखोके दुःखोको समझते ही है। जगत्मे ऐसा कोई पद नही जहाँ शान्ति हो।

शान्ति तो अपने आपमे (आत्मामे) है। किन्तु मोहवश परदृष्टि करके अशान्त होकर शान्तिका अनुभव करना चाहे तो वह असभव बात है। आत्माके सत्य (सहज) स्वरूपका निर्णय पा लेनेके कारण जो कर्तृत्वबुद्धि मिट जाती है उससे जो विश्राम प्राप्त होता है। उस विश्राममे शान्तिका अनुभव होता है। अत यही अन्तिम बात है, यही सर्वसार बात है कि शान्तिका उपाय आत्मतत्त्व का यथार्थ प्रत्यय कर लेना है। सो हे शान्तिके इच्छुक आत्मन् ! अपने आपको (आत्मतत्त्वको) जानो, उसही का उपयोग बनाये रहो और शान्त रहो।

ॐ तत् सत् परमात्मने नम ।

५ दिसम्बर १६६०

हे आत्मन् ! सभी जीवोकी परिणति उनके खुदके लिये है, तू किसी भी अन्य जीवकी परिणतिसे अपनी शान्ति चाहता हो तो यह तेरी अज्ञता है।

हे आत्मन् ! सभी जीवोका अस्तित्व उनको खुदको ही बनाये रहता है, तू किसी भी अन्य जीवको अपना शरण समझता हो तो यह तेरी अज्ञता है।

हे आत्मन् ! दृश्यमान जो कुछ है वह सब जड है, उसमे सुख है ही नही। उसमे तू सुखकी आशा करता करता ही जीवन बिता देगा तो तेरी यह अज्ञता है।

हे आत्मन् ! प्रत्येक जीव अकेला ही था, अकेला ही है, अकेला ही रहेगा। यदि तू अपनेको सपन्न समझता है, हरा भरा समझता है तो बहुत खतरे वाली यह तेरी अज्ञता है।

हे आत्मन् ! तेरे स्वरूपास्तित्वसे अतिरिक्त समस्त पदार्थ तुझमे अत्यन्त भिन्न है। यदि तू उन्हे अपनेसे जुदा नही समझ सकता है तो यह तेरी अज्ञता है।

हे आत्मन् ! तेरेमे चिपका यह शरीर व अन्य जीवो से चिपके ये शरीर हाड मास खून विष्टा आदि अपवित्र वस्तुवो से पूर्ण है, यदि कामादिवासनावश उन्हे तू सुन्दर ही समझता है तो यह तेरा अज्ञता है।

हे आत्मन् ! यदि तप सयममे आगे नही बढ सकता है तो न सही, किन्तु यदि यथार्थ बातके समझने माननेमे प्रमाद करता है तो यह तेरी महती अज्ञता है।

६ दिसम्बर १९६०

विकल्प ही अहित है, अकल्याण हैं, वैरी है। हे निजनाथ ! इन विकल्प वैरियोसे बचो, आत्मदर्शन करो। तू चेतनामात्र है, चैतन्यमात्र है, चित्स्वभाव मात्र है, चिच्छक्तिमात्र है। अहो ! यही स्थिति रहने दो, तू प्रतिभासमात्र है, ज्ञातामात्र है, द्रष्टामात्र है। तेरा अन्यसे तो कुछ सम्बन्ध ही नही। अन्यके विकल्प स्वार्थक्रियाकारी नही, अन्य तो अन्य ही हैं, वे उन अन्यकी परिणतिसे परिणमेगे, तू उनमें कभी भी कुछ कर सकता नही है। अरे अन्यके विकल्प ही तो मेरे वैरी हैं, ये मेरे इस प्रभुस्वरूपका घात कर रहे हैं, मेरा महत्त्व धूलमे मिला रहे है। अहो ! अन्य विषयक विकल्प तो मेरे वैरी है ही, किन्तु निज आत्माके बारेमे भी जब कुछ विचार करता हूँ अथवा ऐसे ही विचार बना रहा हूँ तो ये विकल्प भी इस चिन्मात्र मुझको उठने नही देते, इनसे भी मैं दब रहा हूँ। हा यह बोझ कम जरूर है, यहाँ दिखता है कि लो अब बडे छोटे सभी बोझो से परे होकर निज स्वभावमात्रको अनुभूतिमे आ जानेवाला हूँ।

शुद्ध चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम्।

७ दिसम्बर १९६०

रागादिभाव व रागादिभावका अनुभव इन दोनोपर विचार किया जाय तो रागादिभाव तो पुद्गलके परिणाम है और उसका अनुभव आत्माका परिणाम है। इसका कारण यह है कि रागादिक तो कर्मके उदयसे होते है और उसका अनुभव कर्मके क्षयोपशमसे हुआ है। कर्मोदय सद्भाव रूप ही निमित्त है और क्षयोपशम प्राय अभावरूप निमित्त है। सद्भावरूप निमित्तसे होनेवाली चीज परकी है और अभावरूप निमित्तसे होनेवाली चीज निजकी है। परकी चीज रूपसे यह निज स्वय नही परिणाम सकता है। परकी चीज परउपाधिवश होती है, किन्तु अज्ञानी जीव उसको अपनी चीज मानकर उसमे ही अहरूपसे प्रवृत्त हो जाता है। सो यह स्वच्छन्द होकर रागादिक करता है, किन्तु ज्ञानी जीवको स्वपरका भेद विज्ञान है, अपनी चीज व परकी चीजका भेदविज्ञान है, सो वह तो रागादिभावोको पुद्गलका परिणाम जानता है. और उसके अनुभवको (विशिष्ट ज्ञानको) आत्माका परिणाम जानता है सो यह रागादिभावरूपसे स्वय परिणाम भी नही सकता और न रागादिरूपसे अपने उपयोगमे यह परिणामता है। अत ज्ञानी रागादिक नही करता। और भी देखो—यह ज्ञानी रागादिक के अनुभवको भी पर मानता है। एक निज शुद्ध आत्मतत्त्वकी अनुभूतिको ही अपनी चीज मानता है, फिर वह रागादिक कैसे करे ?

८ दिसम्बर १९६०

मैं सबसे न्यारा शुद्ध चैतन्यमात्र हूँ। इस प्रभुकी प्रभुताकी उपासनामे ही सर्व कल्याण है। अहो जिसमे रागद्वेषकी व विकल्पोकी वृद्धि न हो ऐसे ही साधन व उपयोग बनाकर इस चैतन्य महाप्रभुकी उपासना करके गुप्त ही गुप्त श्रेयोमार्गके अन्तर्गामी बन जाना ही सच्ची चतुराई है। हे राग द्वेषादि-विभावो ! शान्त होओ, मुझे भी शान्त रहने दो। तुम तो कोई पदार्थ ही नही हो सो तुम्हारा बिगडना ही क्या है ? यदि तुम शान्त होओ तो। और, मेरा तो भला ही होगा तुम्हारे शान्त होनेमे, किन्तु जिसकी प्रकृति जडताकी होगई उसमे करुणा कहासे आवेगी ?

प्रियतम ! यदि तुम अपने आपमे सावधान न हुए, तो तुम्हारा क्या अकल्याण है फिर क्या पता नहीं, मन ठिकाना लग सकेगा ? सर्व समागम विषयक सकल्प विकल्पोको कभी कभी उपयोगमे स्थान न देकर विश्राम भी तो कर लिया करो। क्यो व्यर्थ ऐसे ही मरे जाते हो ? अपनी रक्षाकी जुम्मेदारी अपने ही हाथ है। रक्षा भी यही है कि ज्ञानका शुद्ध प्रसार होने दे परभावोमे अनुराग न करे। इतना करना भी यदि दूभर होगया तो रक्षक होने की डींग भी मत मारो।

ॐ शुद्ध चिदस्मि। शुद्ध चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम्।

९ दिसम्बर १९६०

तत्त्व तो आत्मदर्शन द्वारा समुपलब्ध आत्मीय आनन्दका अनुभव है, किन्तु इस ही बातको यदि लौकिक भाषामे बता दिया जावे तो यह कहना युक्त है कि मनका अविक्षिप्त होना तो तत्त्व है और मनका विक्षिप्त होना भ्रान्ति है। इस मेलका कारण यह है कि अनात्मदर्शी प्राणियोकी दृष्टि बाह्य अर्थमे आसक्त होनेसे उनका मन विक्षिप्त रहता है और आत्मदर्शी पुरुषोको सत्य तत्त्व व मार्गका घनिष्ट परिचय होजानेसे उनकी दृष्टि अध्रुव तत्त्वोपर नहीं जमती, न वे अध्रुवकी ओर आकर्षित होते है। अत उनका मन अविक्षिप्त रहता है। इस विषयको पूज्यपाद स्वामीने उपदेशम स्पष्ट किया है—अविक्षिप्त मनस्तत्त्व विक्षिप्त भ्रान्तिरात्मन। धारयत्तदविक्षिप्त विक्षिप्त नाश्रयेत्तत।

यह मन जगह जगह उडा क्यो फिरता है ? इस लिये कि यह अनात्मीय पदार्थोका आश्रय करना चाहता है। वे पदार्थ इसके आधीन नहीं सो मनचाही परिणति न होनेपर मनचाहा सयोग न होनेपर मनचाही स्थिति न होनेपर मन बेचैन रहता है, इससे यह मन उडा उडा फिरता है। इसकी उडान बद करनेका उपाय है—सम्यग्ज्ञान। जैसे रस्सीको साप समझ लेनेवाला पुरुष उडा उडा फिरता है, वही सम्यग्ज्ञान होनेपर धीर व स्थिर हो जाता है। इसी तरह मिथ्याज्ञानसे मन उडा उडा फिरता है और सम्यग्ज्ञान होनेपर वही धीर व स्थिर हो जाता है।

१० दिसम्बर १९६०

लोकमे अन्याय कही भी नही हो रहा है, क्योकि वस्तुकी योग्यता और उपाधिका सन्निधान असन्निधान आदिके कारण जो होना चाहिये वही सर्वत्र होता है। जो होना चाहिये वह न हो तो उसे अन्याय कहते है। यह वस्तुस्वरूप की दृष्टिसे कहा जा रहा है। यदि कोई इष्टराग अनिष्ट द्वेषके वशीभूत होता हुआ इसके प्रकृत बातके मर्मको जानना चाहे तो नही जान सकता। इस विधि से देखो तो यदि कोई अन्याय करके वईमानी करके धन कमाता है और धन मिल जाता है, इसमे जो धन मिला वह तो न्याय है क्योकि उस जीवने पूर्वकाल मे याने पूर्वभवमे जो पुण्यकार्य किया था जिससे पुण्यकर्मका वन्ध हुआ, उसके उदयमे अब धन मिला। वल्कि यदि वह वेईमानी अन्याय आदि न करता तो धन ज्यादा मिलता। वेईमानी आदि करनेसे तो उसका कुछ न कुछ पुण्य कर्म पापकर्मके रूपमे वदल गया सो उसे धन कम ही मिला। उसे धन मिला यह निमित्त नैमित्तिकभावका अतिक्रमण नही होनेसे न्याय तो है किन्तु साथ ही यह भी वात है कि वेईमानी आदि के परिणामसे जो उसके पापवन्ध हो जाता है सो उसके उदयमे वह कीट मकोडोकी योनिमे जन्म लेगा, नरकगतिमे जन्म लेगा, अन्य कुगतियोमे जन्म लेगा और घोर दुःख पावेगा, यह भी न्यायकी बात है। हा मिथ्यात्वके उदयमे सम्यक्त्व हो व मिथ्यात्वके क्षयमे मिथ्यात्व हो तो ये सब वाते अन्यायकी है। सबके ज्ञाता द्रष्टा रहो। अन्याय तो मोहकल्पनामे है सो इस अन्यायको मेटो, वस्तुपरिणमनमे अन्याय नही।

११ दिसम्बर १९६०

जिनकी मति शुद्ध है उनकी गति शुद्ध है। अशुद्ध गति (अवस्था) का निमित्त द्रव्यप्रत्यय है, उसके विनाशका उपाय शुद्ध निज अन्तस्तत्त्वका उपयोग द्वारा स्पर्श करना है। यह उपाय स्वतन्त्र है। जब ही अन्तरमे भाररहित होकर दृष्टिविहार करो तब ही यह शुद्ध निरञ्जन सहज परमात्मा इसकी दृष्टिके समक्ष है। यह वैभव सर्वस्व निजमे ही है, इसके देखनेका प्रमाद प्रमत्त जन प्रमाद करके करते चले आरहे है। उपयोगकी दिशा वदलकर अर्थात् परदिशासे

हटाकर, स्वदिशामे उपयोगको लाकर देखो तो यहाँ वह मधुर सुन्दर परम ज्योति व्यक्त है जिसमे आनन्द सागर नि:शब्द व निरालम्ब उमड उमडकर प्रकट अनुभूत होता है। हे निज नाथ! प्रसन्न होओ, सर्व हित तेरे प्रसादमे ही है। निजनाथकी प्रसन्नता (निर्मलता) का उपाय यह है कि किसी भी परको अपना नाथ न बनाओ। किसीको नाथ माननेका मतलब तो यही है कि उसे ही शरण समझना, उसका ही सतत ध्यान रखना, उसका ही गुणगान करना आदि। सो यदि ऐसा नाथ मानना परके बारेमे होगा तो निजनाथ क्योंकर प्रसन्न होगा? हे मनस्विन्! अपने निजनाथको ही अपना शरण समझो, निज-नाथका ही सतत ध्यान करो, निज नाथके गुणोमे अनुराग करो।

१२ दिसम्बर १९६०

अपने आपको ही समझदार न समझो। सभी आत्मा समझदार है। अपनेको बुद्धिमे चतुराईमे पोजीशनमे बडा मानकर दूसरोको तुच्छ समझ लेना इससे बढ कर अन्याय और क्या है? गम्भीर दृष्टिसे सोचो। यही कुमति अपनेको बरबाद कर देगी। अरे प्रियतम! अपनेपर भी तो दया करो, देखो सभी जीव वही द्रव्य हैं, पदार्थ हैं जो भगवान् हैं। सब जीवोको देखो तो प्रभुताको दृष्टिमे रखकर देखो। सब प्रभु है इनमे सहजस्वरूपको देखो। क्या इनमे सहज स्वरूप का अभी अभाव है? अभाव तो नही, फिर सहज स्वरूपकी प्रमुखतासे ही इन्हे क्यो नही देखते? अपराध तो इनके स्वभावमे व स्वरसमे है ही नही, अपराध आता है तो वह औपाधिक है, आता भी है तो जानेके लिये आता है। अपराध की इन जीवोमे कुछ प्रतिष्ठा नही है। आत्माको चैतन्यमात्र देखो, अपनेको चैतन्यमात्र देखो। पर-आत्माको चैतन्यमात्र देखो। पर-आत्माको चैतन्यमात्र देखोगे तो निजके चैतन्यमात्रस्वरूप की स्मृति प्रतीति अधिक रहेगी। निजको चैतन्यमात्र देखोगे तो अपराध भी सब पुछ जाँयगे, मिट जाँयगे। वह चैतन्यमात्र क्या है, तू ही तो स्वय है। ॐ शुद्ध चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम्। ॐ ॐ ॐ। शुद्ध चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम्।

१३ दिसम्बर १९६०

विषय कषायका अन्तिम रूप विषय कषायका छूटना है। यदि सद्बुद्धि हुई तो विषयकषाय छूट ही जाते है। यदि दुर्बुद्धि हुई तो विवक्षित विषय कषाय छूटा और अन्य विषय कषायका आक्रमण हुआ। उस अन्य विषय कषायका भी अन्तिमरूप उसका छूटना है। वहाँ भी यदि सद्बुद्धि हुई तो वह विषय कषाय छूट ही जाता है। यदि दुर्बुद्धि हुई तो वह विषय कषायतो छूटा और अन्य विषय कषायका आक्रमण हुआ। इसी तरह आगेकी भी बात समझना। हे आत्मन्! विषय कषाय ये तो छूट ही जाँयगे, जोर हनेवाले नही, जो वस्तुभूत नही, जो अज्ञानकल्पित है उनमे प्रीति मत करो। उनकी प्रीतिसे सकट ही सकट आवेंगे। विषय कषायकी प्रीति व सेवनके भावमे शान्ति भी तो नही, अशान्ति ही अशान्ति है। फिर क्यो यह दुराशय किया जाय महाशय!। यदि तेरे सुखाशय है तो सदाशय ही रखो। विषय कषाय अहितरूप ही है—यह बात जल्दी समझना है तो विषय कषायवाले दूसरे प्राणियोकी हालत देखकर समझ लो। यदि बारीकीसे विषय कषायसे हानि व निर्विषय व निष्कषाय भावमे लाभ समझना है तो धैर्य एव विवेकसे यथार्थ वस्तुस्वरूपका मनन करो। अन्तिम निचोड यह है कि विषय कषायसे मुक्त होजानेमे ही आत्माका हित है।

१४ दिसम्बर १९६०

दुःखमात्र आशा ही है। यदि आशाका अभाव है तो दुःख रह ही नही सकता चाहे बाह्यमे कुछ भी स्थिति हो। इसका कारण यह है कि दुःखरूप पर्याय मलिनआत्मामे मलिनआत्मपरिणतिमे होता। वह किसी अन्य पदार्थमे नही होता। अन्य पदार्थसे मेरेमे कुछ भी हो जाना असभव है, अशक्य है। दुःख होनेका कारणभूत परिणमन आशारूप परिणमन है। यदि आशा है तो दुःख है। आशा भी क्या—किसी पर वस्तुके बारेमे अपने मनके पुलाव बाँधना। इससे मिलेगा क्या? क्या जो सोचा वही हो जावेगा? नही, क्योकि सोचना इस आशावान् जीवकी परिणति है और परका कुछ होना उस परकी ही परिणति है। कोई द्रव्य किसी अन्य द्रव्यका परिणमन नही कर सकता। फिर आशा

करना बिलकुल बेकार है। अरी आशा ! तूने ताण्डव नाच करके इतना तो मेरा कराया, नचाया, फिर भी तू सन्तुष्ट हुई है या नहीं। यदि सन्तुष्ट हुई है तो सन्तुष्ट रह, अब न ऊधम मचा। यदि सन्तुष्ट नहीं रह सकती तो तेरी सन्तुष्ट न रहनेकी आदत ही बन गई, सो सन्तुष्ट तू कभी भी नहीं होगी, फिर व्यर्थ का क्यों परिश्रम करती है, ऊधमका परिश्रम छोड़ दे। देख इनमें तेरी भी थकान मिट जावेगी और मेरा भी दद-फद कट जावेगा। ॐ नैराश्यमेवामृतम्। ॐ शुद्धम्।

१५ दिसम्बर १९६०

चेतन पदार्थोंमें तो सहज चिन्मात्र वस्तु दिख जाना व दृश्य अचेतन पदार्थों में केवल परमाणु-परमाणुमात्र दिख जाना बहुत ही उत्तम होनहारका सूचक है। ऐसा दिख जाना चर्मचक्षु आँखों द्वारा नहीं होता, ज्ञानचक्षु द्वारा होता है। इस शुभ अवसरको पाने का उपाय वस्तु स्वरूपका अभ्यास, परिचय व प्रत्यय है। प्रत्येक वस्तु निजसत्तामात्र है, उसकी शक्तियाँ उसी ही में तन्मय हैं, उसकी परिणतियाँ उस काल उसही में तन्मय हैं। परिणतियाँ अगले काल में नहीं रहती, उनका व्यय नवीन परिणतिके उत्पाद रूपमें होता है, फिर अगले कालमें उस नवीन परिणतिका भी व्यय अन्य नवीन परिणतिके उत्पाद रूपमें होता है। इस प्रकार उस वस्तुमें अपने स्वभावका ध्रौव्य रहते हुए भी उत्पाद व्ययका सतान चला जाता है। यह उत्पाद व्यय ध्रौव्य भी प्रत्येक वस्तु का उसही वस्तुमें है। सबका स्वरूप अभेद्य है। किसी भी वस्तुमें किसी भी अन्य वस्तुका प्रवेश ही नहीं है। अनेक पदार्थोंके सयोगके समय व विशिष्ट सयोगके समय भी वे सब पदार्थमात्र अपने-अपने अस्तित्वमें ही निवास करते हैं। देखो देखो सबको, किन्तु देखो उस पद्धतिसे जिस पद्धतिसे वे मात्र अपने-अपने अस्तित्वमें अवच्छिन्न ही ज्ञेय रहा करें। ॐ शुद्धं चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम्।

१६ दिसम्बर १९६०

उपसर्ग उपद्रवके कालमें अपने चित्तको धीर बनाये रख सकना ज्ञानबलका

कार्य है। हे आत्मन् ! तेरा निज स्वरूप क्या है ? वह तेरे निज चतुष्टयमे है। तू अपने चतुष्टयसे बाहर नही है, फिर बाह्यमे बाह्य अर्थोका कुछ भी परिणमन हो वह तेरेसे तो बाह्य ही है, बाह्यका अन्तरसे सम्बन्ध क्या ? बाह्य व अन्तरमे तो जमीन आसमानका अन्तर है। बाह्यकी ओर दृष्टि न कर। बाह्य से अपने मे सुधार बिगाड मत मान। बाह्य-बाह्यमे है, तेरेसे उसका क्या सम्बन्ध ? आत्मन् ! तेरा काम तो सब तेरेमे चल रहा है, कैसा भी चल रहा, हो, कैसे भी चल रहा हो, चल रहा है सब तेरा ही काम तेरेमे ही। अब बात इतनी है कि ऐसा ही मान लो तेरी दृष्टिमे यथार्थ रूपसे तू आ जायगा और यही तो प्रभु है, सो दर्शनमे आ जावेगा। यदि ऐसा नही मान सकता और उल्टा ही मानेगा कि मेरा काम परमे कुछ कर देनेका है या कोई अन्य पदार्थ मेरेमे कुछ सुधार बिगाड कर देता है तो फिर मर इस ही पचडेमे। देख सब कोई तेरेसे जुदे ही है, किस पर विश्वास करता है कि जो मैं चाहूँगा सो यहाँ होगा, यह मेरे अधिकारमे है। चेतन पदार्थ हो चाहे अचेतन पदार्थ हो, है सब तेरेसे भिन्न। उनसे अपनें हितकी आशा न कर। अपने ही चेतना स्वरूप की दृष्टिके बल पर अपने ही सहारे रहै, इस ही उपायसे तू लोकोत्तर ज्ञानविकास व आनन्दविकास पावेगा।

१७ दिसम्बर १९६०

जैसा कोई हवेली बनवाना चाहता है तो उसका लक्ष्य हवेली हो गया, परन्तु हवेली बनवानेके लिये वह अनेक व्यवसाय करेगा, कभी ईंटोका सञ्चय करेगा, कभी सिमेन्टका परमिट बनवावेगा, कभी कुछ, कभी कुछ करेगा और उसके रोज सकल्प चलेंगे कि आज यह काम करना है और कल यह काम करना है तो इस तरह उसके रोजके उपलक्ष्य अनेको हो जाते है। फिर भी लक्ष्य एक ही रहता है। उपलक्ष्य बदलते बदलते रहते है किन्तु लक्ष्य वही एक रहता है। इसी प्रकार ज्ञानी जीवका लक्ष्य केवल ज्ञाता द्रष्टा रहने रूप शुद्धस्वरूपमे स्थिर होना है, परन्तु ऐसा होनेके लिये जो परिणाम साधकमय है उनको प्राप्त करनेके लिये पहिले परम्परया अनेक शुभ भाव होते है। वह

साधक कभी ध्यान करेगा, कभी स्वाध्याय करेगा, कभी पूजन करेगा, कभी सत्सङ्गसेवा करेगा, दान करेगा, संयम करेगा, तप करेगा। समय-समय पर संकल्प भी चलेंगे कि आज यह करना है, अब यह करना है तो इस तरह उसके रोज उपलक्ष्य अनेकों हो जाते हैं, किन्तु लक्ष्य एक ही रहता है कि नीरंग निस्तरङ्ग होना है। उपलक्ष्य बदलते बदलते रहते है और अन्तमें सब समाप्त हो जाते है, किन्तु लक्ष्य वही एक रहता है, अन्तमें लक्ष्य भी पूर्ण हो जाता है, समाप्त हो जाता है और परमविश्राम लिया जाता है। जैसे उस लौकिक का भी हवेली बन जाने पर लक्ष्य उपलक्ष्य तो वे समाप्त हो जाते हैं और मौज विश्राम लिया जाता है।

१८ दिसम्बर १९६०

हठ तो चित्स्वभावकी होना चाहिये अन्य चीजोकी हठ करना महती वेवकूफी है। मैं चित्स्वभावमात्र हू मेरा काम मात्र चेतना है, अर्थात् ज्ञाता द्रष्टा रहना है, अन्य बातसे मेरा वास्ता ही नही, ऐसा हठ होना ठीक है, किन्तु राग, द्वेष आदि परभावोमे हठ होना बिलकुल ठीक नही। बाह्य अर्थोकी व्यवस्थामे कोई कुछ आग्रह करे उसके विरुद्ध अपना कुछ हठ करना कभी भी ठीक नही है। हा यदि परके हठमे अपनी जीविकामे या धार्मिक कार्यमे विशेष हानि होती हो तो प्रतीति न बिगाडते हुए किसी अंश तक हठ कर लेना और बात है।

मैं चित्स्वभावमात्र हूँ मेरा काम चेतन है अन्य बातसे मेरा वास्ता ही नहीं, ऐसी ही अन्तर्भावना करके अपने आपमे आपकी उपलब्धि करके आनन्दमय होना अपना आवश्यक कर्तव्य है। सत्य अन्तर्भावनाका विरोधक विषयसेवा है, विषयसेवाका पोषक अज्ञानभाव है। अतः अज्ञानभाव दूर करके ज्ञानानन्द-विकासका उद्यम करके महान् पुरुषार्थ करते हुए अपने निजदेशका उद्धार करो।

ॐ शुद्ध चिदस्मि। ॐ शुद्धं चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम्।

१६ दिसम्बर १६६०

ससारमे सर्वत्र क्लेश ही क्लेश है। इसका कारण यह है कि जो आनन्द-मय तत्त्व है उसकी जब उपलब्धि नही होती तो वर्तमान स्थितिमे तो आनन्द है ही नही, सो सन्तोष नही होता और फिर वर्तमान स्थितिमे भी कुछ न कुछ कल्पनाये करके तृष्णाकी पूजा करके वह अपनेको सक्लिष्ट बना लेता है। आनन्दनिधान ज्ञानमय निज स्वरूपकी पहिचान हुए विना तो वस्तुत शान्ति-मार्ग पाया ही नही जा सकता है। यह आत्मा कभी निर्दोष निज अनन्त-चिद्विलासमय सिद्ध प्रभु हो सकता है, ऐसे हो जानेका इस आत्मामे स्वभाव है या नही। यदि स्वभाव नही है तो कभी सिद्ध प्रभु हो सकता नही, सो यह तो कह नही सकते कि स्वभाव नही है, स्वभाव है ही, यही कहना चाहिये। तो अब उस स्वभावको देखो, विचारो। स्वभावकी दृष्टिसे अवश्य ही पूर्ण विकास पा लिया जावेगा। वह आत्मस्वभाव जरा भी नही बदलता, अत अपरिणामी है। वह आत्मस्वभाव किसी समयसे बना हो या कभी मिट सकता हो, ऐसा है ही नही, अत सनातन है। वह आत्मस्वभाव द्रव्य गुण पर्याय किसी लक्षणमे नही बधता, अत· वह निर्विलक्षण स्वलक्षणमात्र है। वह आत्म-स्वभाव प्रदेशोमे नही बधता, अत वह न एक है, न अनेक है। वह तो मात्र-स्वसवेदनगम्य है। हे चित्स्वभावमय परमब्रह्म ! प्रसन्न होओ। ॐ शुद्ध चिदस्मि।

२० दिसम्बर १६६०

तत्त्वज्ञानके प्रयत्नमे सर्वप्रथम प्रमाता (ज्ञाता) को "है" का प्रतिभास होता है। "है" से पहिले अन्य कुछ प्रमेय नही हैं, हाँ, प्रमाणस्वरूप यह प्रमाता स्वय है जो कि "है" के विकल्पमे भी नही उतरा है अर्थात् भ्रमवास-नाओमे उलझा हुआ है, तत्त्वज्ञानके मार्गमे कदम रखने वाला नही है। खैर, यहा तो यह विचारा जा रहा है कि तत्त्वज्ञान वृद्धिका प्राग क्या क्रम होता है। सर्वप्रथम होने वाला "है" का प्रतिभास अविशिष्ट प्रतिभास है। यह "है" किसी देश काल आकारमे बधा हुआ नही है। यह "है" अर्थात् अविशिष्ट

सत् स्वत सिद्ध है, स्वसहाय है व निर्विकल्प है। अब इससे आगे बढना होता है तो वह भेदरूपमे ही आगे बढना होता है, जो भेद धर्म रूपमे होता है। भेद अथवा धर्म जिस इस धर्मीमे रोपे जा रहे है वह है "है" अथवा महासत्ता है। यहा महासत्ता अप्रसिद्ध नही है क्योकि अप्रसिद्धमे भेद साध्य नही होता सो है तो प्रसिद्ध, किन्तु प्रसिद्ध है विकल्पद्वारा अर्थात् यह अविशिष्ट सत् विकल्पसिद्ध है। विकल्पसिद्ध धर्मीमे भाव या अभाव साध्य होता है, सो इस अविशिष्ट सत् को यदि अभावरूप माने तव तो आगे चर्चा ही क्या करना अथवा बुद्धिमे आ रहा है सो इसे अभावरूप कैसे कहे, यह तो भावरूप है। इस भावरूप अविशिष्ट सत् के विवरणमे जव आगे बढे तो यह देशकालानवच्छिन्न सत् देशावच्छिन्न होता है। देशावच्छिन्न होते ही यह आवान्तर सत्के रूपमे, जो कि परमार्थसत् है, प्रविभक्त हो जाता है।

२१ दिसम्बर १९६०

देशके रूपमे अवच्छिन्न देखे जानेपर देश अनन्त ज्ञात हो जाते हैं। ये देश क्षेत्रमुखेन दृष्ट द्रव्य है। इनका अपर नाम अवच्छिन्न देश है। ये अवच्छिन्न देश सविशेष हैं अथवा विशेषोके द्वारा उसी प्रकारके देश है अर्थात् इन अवच्छिन्न देशोका भेद करनेपर इनमे गुण दृष्ट होजाते है। इस प्रकार देश और गुण प्रसिद्ध हो जाते हैं। इसके बाद देशके भेद करनेपर देशाश और गुण के भेद करनेपर गुणाश ज्ञात होते है। ये देश देशाश गुण गुणाश इन नामोसे भी कहे जाते हैं—द्रव्य, प्रदेश, गुण व पर्याय। इनका यथार्थ अवबोध होनेपर कर्तृत्वबुद्धि व स्वामित्वबुद्धि अस्त हो जाती है। ये असद्बुद्धिया तव तक ही प्रतिष्ठाको प्राप्त होती हैं जब तक वस्तुस्वातन्त्र्य अवगत नही होता है। वस्तुका स्वरूपसर्वस्व खुदका खुद ही मे है। अत. न तो किसी अन्य वस्तुको अन्य वस्तु कुछ करती है और न किसी वस्तुका अन्य वस्तु स्वामी है। यह मैं आत्मा अखण्डदेशी अपने ही प्रदेशोमे हूँ, अपने ही गुणोमे हूँ और अपनी ही पर्यायोमे हूँ। मेरे इस निज क्षेत्रसे वाहर न मेरा कोई देशाश है, न मेरा कोई गुण है, न मेरा कोई परिणमन है, फिर मेरी करतूत वाहर किसी पदार्थमे चल ही कैसे

सकती। यह सब मर्म देश देशांश गुण गुणांशके यथार्थ परिज्ञात होनेपर विशद अवगत हो जाता है। ज्ञानका फल निर्मोह हो लेना है। उस निर्मोहताकी सिद्धि इस सम्यग्ज्ञानसे होती है।

२२ दिसम्बर १९६०

परपदार्थका समागम अशान्तिका कारण होता है। परसमागममे कुछ शान्ति भी प्रतीत हो तो वह शान्ति परके कारण नही हुई, किन्तु अशान्तिका विशेष कारण नही होनेसे विशेष अशान्ति नही हुई, इसी स्थितिको अपेक्षाकृत शान्ति मान लेनेसे यह कहा जाता है कि इस समागमने शान्ति हुई है। वस्तुत जो शान्ति हुई है वह निजरससे हुई है और जितने अशमे अशान्ति हुई है वह परउपाधिको निमित्त पाकर हुई है। स्वभावपरिणमन परके अभावमे होता है, विभावपरिणमन परके सद्भावमे होता है। जितनी-जितनी परमे उपेक्षाकी वृद्धि होगी उतना उतना ही विकास बढता चला जावेगा। परके सगसे आत्माको हानि ही उठाना पडती है, किन्तु मोही जीवको परसग ही रुचता है। दुखका कारण परसग ही है। यदि कोई ऐसा साहस करे कि जिसमे परपदार्थकी रच भी परवाह न करके केवल आत्मस्वरूपकी ही रुचि करके उसमे ही स्थिर होनेका यत्न करे तो उसको परमआनन्दका स्वामी बन जानेकी बात सुनिश्चित है। पर पर ही है, इस कारण दुखस्वरूप है, आत्मा आत्मा ही है, इस कारण उससे आनन्द ही होता है।

२३ दिसम्बर १९६०

इस जगत्मे जो कुछ भी दृश्यमान हो रहा है वह असार ही है, वास्तविक स्वरूप नही है। जो अवास्तविक है उसमे राग क्या करना, अवास्तविककी रुचिसे आत्माका कोई हित नही, प्रत्युत अहित ही है। दृश्यमान जो कुछ है वह अनेकद्रव्यपर्याय ही तो है। कोई तो समानजातीय द्रव्यपर्याय है और कोई असमानजातीय द्रव्यपर्याय है। अनेक द्रव्योका मेल क्या कभी स्थिर रह सकता है? अनेक द्रव्योका मेल क्या कभी अहेतुक या सत हो सकता है? यह मेल तो मायामय, अवास्तविक व असार है। इन दृश्यमान मायामे जो रुचि करना है

वह मायाग्रस्त व मायामय बन बन कर जगत्मे डोलता रहता है। इन माया रूपोंमे रच भी आनन्द नही है। हे आत्मन्! कल्याण चाहो तो मायासे हट कर वास्तविक निजब्रह्म स्वरूपमे रत होनेका यत्न करो। वह यत्न ज्ञानस्वरूप है, अत स्वात्मोपलब्धि ज्ञान द्वारा ही साध्य है। भेदविज्ञान करना ही कल्याण का मूल उपाय है।

२४ दिसम्बर १६६०

इस आत्माका सर्वस्वसार निज चैतन्यस्वरूप ही है। निजस्वरूपमे स्वयका अनुभव हो तो यही वास्तविक वैभव है, यह स्वय परिज्ञात हो जावेगा। यह एक ही वैभव है अन्य कोई परपदार्थ तो आत्माके रच भी वैभव नही, इस कारण इस स्वानुभवको सर्वोत्कृष्ट या उत्कृष्ट वैभव नहीं कहा जा सकता, आत्मवैभव तो यही एक है। यदि अन्य कुछ आत्माके जरा-मरासे भी वैभव होते तो स्वानुभवको उत्कृष्ट वैभव कहा जा सकता था। हा, नाममात्रको अन्य कुछ को वैभव कहनेको हठ करना हो तो चलो, ऐसा भी मान लिया जावेगा, किन्तु उसका यह अर्थ लगेगा कि वै भव अर्थात् निश्चयसे वह भव ही है, ससार ही है विडम्बना ही है। यथार्थ वैभव तो चिदानन्दमय निज आत्मतत्त्वका अनुभव है, इसका अर्थ है वि=विशेषरूपमे भव=होना, सो विभव और विभवका भाव सो वैभव है। ॐ शुद्ध चिदस्मि। शुद्ध चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम्।

२५ दिसम्बर १६६०

जीव आत्मस्वभावकी दृष्टिमे रहे, फिर तो अकल्याण अर्थात् अविनश्वर आनन्द हुआ ही हुआ समझो, किन्तु आश्चर्यकी बात है कि आत्मस्वभावकी दृष्टिमे लग जाना कठिन हो रहा है। जीवके साथ निमित्तनैमित्तिकभाव तथा अन्योन्यप्रवेशरूप एकक्षेत्रावगाह दोनो प्रकारके बन्धनोको प्राप्त कर्म लगे हैं। उनके उदयमे डबल करामात है— (१) एक तो जीवके विभावमे सृष्टिमे निमित्त हो जाना (२) दूसरे नवीन कर्मोके बध जानेमे निमित्त होजाना।

उदयागत द्रव्यप्रत्ययको निमित्त पाकर नवीन कर्म बध जाते है, मानो भीडमे

रेलयात्रामे सफर करते हुए किसी मुसाफिरके सीट छोडनेपर नवीन मुसाफिर सीटपर कब्जा कर लेता है, याने वह नवीन मुसाफिर उदयागत मुसाफिरको निमित्त पाकर आरामसे बैठ गया है। हा, इतनी बात और है कि सीट छोडने वाले मुसाफिरका सकेत मिले या पास बैठे हुए मुसाफिरका सकेत मिले तो नवीन मुसाफिरको सीट पानेमे आसानी रहती है।

उदयागत द्रव्यप्रत्ययके निमित्तसे रागादिभाव भी होते है व नवीन कर्मबन्ध भी होता है। एक परिणमन अनेक पदार्थोके परिणमनोमे भी निमित्त हो जाता है। हा, इतनी बात अवश्य है कि उदयागत द्रव्यप्रत्यय होनेपर यदि रागादिभाव हो तो नवीन कर्मबन्ध होता है। उदयागत द्रव्यप्रत्यय हो और रागादिभाव न हो तो नव्य कर्मबन्ध नही होता। इसी कारण आगममे प्राय यह प्रसिद्धि है कि जीव के विभाव परिणामको निमित्त पाकर कर्मबन्ध होता है, किन्तु वास्तव मे ऐसा है कि नवीन कर्मबधका निमित्त तो उदयागत द्रव्य प्रत्यय है और उदयागत द्रव्यप्रत्यय के इस निमित्तत्वका निमित्त जीवके रागद्वेषादि विभाव हैं। होनेपर रागादिभाव हो तो नवीन कर्म बधते है। यदि रागादि-भाव न हो तो नवीन कर्म नही बधते। इस नियमके कारण मौलिक बात यही है कि रागादिभाव ही वास्तवमे आस्रव है। यहा प्रश्न यह हो सकता है कि क्या यह भी सभव है कि उदयागत द्रव्यप्रत्यय होनेपर रागादि भाव न भी हो। उत्तर हो जब जघन्य अनुभाग वाले उदयागत द्रव्यप्रत्यय हो तब सभव है कि रागादिभाव न भी हो।

उक्त विवरणसे यह शिक्षा लेना है कि कर्मका नाता कर्मसे है, तुम तो अपने अनादि अनन्त अहेतुक असाधारण चैतन्यस्वभावमात्र आत्मतत्त्वको समझो। निज चैतन्यप्रभुकी उपासना करो। इसीमे कल्याण है।

इति सहजानन्द डायरी १९६० समाप्त।

०००

शास्त्रमाला प्रेस, सदर मेरठ।
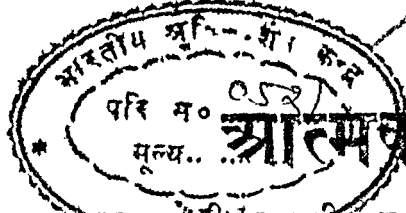
आत्मकीर्तन

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री मनोहर जी वर्णी
"श्रीमत्सहजानन्द" महाराज द्वारा विरचित

—:*:—

हूँ स्वतन्त्र निश्चल निष्काम, ज्ञाता द्रष्टा आतम राम ॥टेक॥

१

मैं वह हू जो हैं भगवान । जो मैं हू वह हैं भगवान ॥
अन्तर यही ऊपरी जान । वे विराग यहँ रागवितान ॥

२

मम स्वरूप है सिद्ध समान । अमितशक्तिसुखज्ञाननिधान ॥
किन्तु आशवश खोया ज्ञान । बना भिखारी निपट अजान ॥

३

सुख-दुख दाता कोई न आन । मोह राग रुष दुखकी खान ॥
निजको निज परको पर जान । फिर दुखका नहिलेश निदान ॥

४

जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम । विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम ॥
राग त्यागि पहुंचू निजधाम । आकुलता का फिर क्या काम ॥

५

होता स्वयं जगत परिणाम । मैं जगका करता क्या काम ॥
दूर हटो परकृत परिणाम । 'सहजानन्द' रहू अभिराम ॥

सैद्धान्तिक विविध ज्ञानके लिये इन पुस्तकोसे लाभ लीजिये

विज्ञान सेट

धर्मबोध पूर्वार्द्ध	।)॥
धर्मबोध उत्तरार्द्ध	॥)
जीवस्थान चर्चा	१॥)
गुणस्थान दर्पण	१)
समस्थान सूत्र १ स्कध	२)
,, ,, २ स्कध	१।)
,, ,, ३ स्कध	१॥)
,, ,, ४ स्कध	१॥)
,, ,, ५ स्कध	१॥)
,, ,, ६ स्कध	१॥)
,, ,, ७ स्कध	१॥)
समस्थानसूत्रविषयदर्पण	॥=)
द्रव्य दृष्ट प्रकाश	।)
सिद्धान्तशब्दार्णव सूची	।=)
दृष्टि	।-)
जीव सदर्शन	≡)
सुबोध पत्रावलि	॥=)
तत्त्वार्थदश प्रथम भाग सूत्र प्रवचन	१)

यह पूरा सेट लेने पर =) प्रति रु० कमीशन

अध्यात्म ग्रन्थ सेट, अध्यात्म प्रवचन सेट, विज्ञान सेट व पावन सेट चारो सेट लेने पर ≡) प्रति रुपया कमीशन

पावन सेट

श्री समयसार स० टीका स०	१॥)
श्री प्रवचनसार स० टीका स०	१।)
त्रैलोक्य तिलक विधान पूर्वार्द्ध	४)
त्रैलोक्य तिलक विधान उत्तरार्द्ध	५)
कृतिकर्म (भक्ति, क्रिया, प्रति० स्तोत्र)	३)
सरल जैन रामायण प्रथम भाग	३)
सूक्ति सग्रह	।=)
श्रावक प्रतिक्रमण	=)
मोक्ष सन्धि	=)
जीवन झाकी	-)

यह सेट लेने पर =) प्रति रु० कमीशन

विद्यार्थी सेट

धर्मबोध पूर्वार्द्ध	।)॥
धर्मबोध उत्तरार्द्ध	॥)
छहढाला	॥=)
रत्नकरण्ड श्रावकाचार	॥=)
द्रव्य संग्रह	।=)
मोक्ष शास्त्र	२)
क्षत्र चूडामणि	२॥)
नाममाला	॥)
सस्कृतशिक्षा प्रथम भाग	।=)
,, ,, द्वितीय भाग	॥-)
,, ,, तृतीय भाग	॥=)
,, ,, चतुर्थ भाग	॥)

यह सेट लेने पर -) प्रति रु० कमीशन होगा